इस पुस्तक के प्रकाशन में सम्पूर्ण व्यय श्रीमान् कल्य.एामल जी उम्मेदमल जी बरडिया ने प्रदान किया है। यह सभी महानुभावों के लिये अनुकरणीय है। अणुव्रत समिति इसके लिये सादर आभार प्रकट करती है

जयपुर का पता :—

कल्याणमल उम्मेदमल बरडिया

'उम्मेद भवन' बारह गणगौर का रास्ता, जयपुर।

बम्बई का पता:—

उम्मेदमल सागरमल बरडिया

कालबा देवी, घाबुलकर बाडी,

जयपुरिया बिल्डिंग, बम्बई नं० २

मुद्रक :—

फ्रैण्ड्स प्रिन्टर्स,

जौहरी बाजार, जयपुर।

प्रकाशकीय

भारतीय दर्शन की परम्परा में जैन दर्शन का अत्यन्त महत्व पूर्ण स्थान है। जैन दर्शन एक व्यवस्थित व युक्ति संगत दर्शन है, उसकी जानकारी प्रत्येक जैन को ही नहीं बल्कि प्रत्येक भारतीय को होनी चाहिये, इसके लिये सरल व सुन्दर साहित्य की बहुत अपेक्षा है।

मुनि श्री छत्रमलजी ने इसी अपेक्षा को दृष्टिगत करके 'ज्ञान वाटिका' के रूप में जैनतत्वज्ञान इतिहास आदि को सक्षिप्त व सरल भाषा और सुन्दर शैली में रखकर जिज्ञासु पाठकों के लिये बहुत ही मूल्यवान पुस्तक तैयार की है।

मुनि श्री छत्रमलजी आचार्य प्रवर श्री तुलसी गणि के विद्वान अंतेवासी है। शतावधानी होने के साथ साथ अनेक भाषा के कवि व कुशल वक्ता भी है। जयपुर चातुर्मास के अन्तर्गत आपने तीन चार पुस्तके लिख कर पाठकों का बहुत उपकार किया है।

भूमिका लिखने का कष्ट पं० चैनसुखदासजी नाय तीर्थ प्रिंसिपल जैन संस्कृत कालेज, जयपुर ने किया इसके हम कृतज्ञ हैं।

इसके सविधी धारने व प्रूफ शोधन का पूर्ण श्रम श्री उमराव चन्दजी मेहता (मुन्सिफ जयपुर डिस्ट्रिक्ट) व श्री गुलाबचन्दजी मेहता (भूतपूर्व अधिकारी इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया) ने किया तथा चम्पालालजी चिण्डालिया, श्री किशन गोपालजी भगतवगढ़ वाले एवं श्री सुरेन्द्रजी उदयपुर वाले का अच्छा सहयोग रहा है।

अणुव्रत समिति.

अपनी ओर से

मनुष्य एक मननशील प्राणी है, जब वह अपनी आंखों के सामने विराट् विश्व की नाना गति विधियों को देखता है तो सहसा, क्या? क्यों? कैसे? के गहन तिमिर में भटक जाता है। बुद्धि (ज्ञान) की आंखों से इस का समाधान पाने का प्रयत्न करता है और थोड़ी ही दूर बढ़कर स्पष्ट या अस्पष्ट कोई एक उत्तर पाकर संतोष की सांस भर लेता है। चराचर के विषय में उसका यह बौद्धिक अवलोकन ही दर्शन या 'तत्वज्ञान' के नाम से विख्यात हो जाता है। बुद्धि का कांच जैसा साफ या धुंधला होता है, वैसा ही अवलोकन का निष्कर्ष-दर्शन या तत्वज्ञान (स्पष्ट या अस्पष्ट) बन जाता है; दर्शनों की विविधता और तरतमता का मूल कारण यही है।

दृष्टि की निर्मलता और सूक्ष्मता के कारण जैन दर्शन और उसका तत्वज्ञान बहुत ही गहराई में जाता है, वह एक महासागर की तरह विशाल भी है, गहरा भी है। सामान्य बुद्धि न उसकी थाह पा सकती है न उसकी गहराइयों को समझ ही सकती है। साधारण बुद्धि के लिए भाषा और शैली को भी साधारण बनना पड़ता है; पाचन शक्ति के अनुसार ही भोजन दिया जाता है और ऐसे प्रयत्न सदा से होते भी आये हैं।

'ज्ञान–वाटिका' कोई नवीन प्रयत्न नहीं है। हां–यदि इसके क्रम को कोई नवीन कहना चाहे तो कह सकता है। इसमें तत्व-ज्ञान दर्शन (स्याद्वाद सप्तभंगी आदि) आचार और :इतिहास को एक साथ क्रम पूर्वक सरल भाषा व शैली में रखने की चेष्टा की गई है। जहां तक हो सका है परिभाषायें सरल करने का प्रयत्न किया है। मुझे भय था कहीं "मघवा का अर्थ विड़ौजा" और "जल का अर्थ सवंर" वाली बात न बन जाये। आशा है ऐसा नहीं हुआ है। हां, एक बात जरूर है कि बिल्कुल प्राथमिक श्रेणी के विद्यार्थियों को इस में कुछ कठिनाई हो सकती है क्योंकि आखिर यह कोई उपन्यास तो है ही नहीं, 'तत्वज्ञान' की पुस्तक है। 'आदर्श पोथी' इसके साथ जुड़ जाने से संभव है पाठकों को विशेष रुचिकर होगी । मुनि श्री चंदजी का सहयोग जो रहा है उसके बारे में कुछ कहूँ ऐसा नहीं लगता है इस श्रम की सफतता का निर्णय तो स्वयं पाठकों के हाथ में है।

कार्तिक पूर्णिमा २०१५

चंदन-महल, जयपुर। 'मुनि छत्र'

भूमिका

विश्व के धर्मों में जैन धर्म का एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन शास्त्रों के तल स्पर्शी अध्ययन से पता चलता है कि इस धर्म में उन अनेक समस्याओं का समाधान प्राप्त हो सकता है जो समय समय पर मानव समाज को आन्दोलित, आकुलित और विलोड़ित करती रहती है। जो धर्म किसी समस्या का समाधान बनकर प्राणी मात्र के लिये अपने अस्तित्व का उपयोग सिद्ध नहीं कर सकता उसे धर्म जैसे पावन नाम से क्यों व्यवहृत किया जाना चाहिये। धर्म की यही जीवनी शक्ति है कि वह दुनियाँ को संकटों से उबारे। आचार्य गुणभद्र कहते हैं—

धर्मो वसेन् मनसि यावदलं स तावद्
हंता न हंतु रपि पश्य गतेऽथ तेस्मिन्
दृष्टा परस्पर हति र्जनकात्म जानां
रक्षा ततोऽस्य जगतः खलु धर्म एव ॥१॥

अर्थात् जब तक मन में धर्म रहता है तब तक मनुष्य मारने वाले को भी नहीं मारता; किन्तु देखो! उसके चले जाने पर औरों की कौन कहे, पिता और पुत्र भी परस्पर एक दूसरे की हत्या करने को तत्पर हो जाते हैं।

इस विवेचन से सिद्ध होता है कि सारा धर्म अहिंसा में निहित है। जब तक जन मानस में अहिंसा धर्म का तत्व प्रतिष्ठित न हो तब तक न व्यक्ति का भला है, न समाज और राष्ट्र का। आज सारा संसार एक महान् आतंक और विप्लव के बीच गुजर रहा है। किसी भी राष्ट्र की ओर दृष्टिपात किया जाय कहीं भी शान्ति अथवा निराकुलता नहीं है। इस सबकी एक ही चिकित्सा है कि भगवान् महावीर के सर्वोदय तीर्थ का विश्व में प्रचार किया जाय। आचार में अहिंसा और विचार में समन्वय का सामंजस्य ही सर्वोदय तीर्थ का सार है। अपने किसी भी प्रयत्न से जो इस तीर्थ के प्रचार में सहायता देता है वह वस्तुतः जगत की सेवा करता है।

'ज्ञान वाटिका' का प्रणयन और प्रकाशन इसी दिशा में एक पावन साहित्यिक प्रयास है। यह पुस्तक खास कर बच्चों के लिये लिखी गई है। बच्चे ही युवा और वृद्ध होते हैं। वे ही भावी पीढी के निर्माता हैं। उनको धर्म तत्व हृदयंगम कराने का प्रयत्न मानव समाज की एक अनुकरणीय सेवा है। मुनि श्री छत्रमलजी महाराज एक शतावधानी एवं मेधावी साधु हैं। इस वर्ष उनका जयपुर चातुर्मास अध्ययन अध्यापन और प्रचार आदि की दृष्टि से बड़ा ही सफल रहा। अणुव्रत आन्दोलन को और भी सजीव बनाने के लिये यहाँ महाराज के अनेक प्रेरणा प्रद कार्यक्रम हुए। इस पुस्तक के अतिरिक्त तीन चार अन्य पुस्तकों का भी आपने निर्माण किया है।

मुझे यह आशा है उनकी यह 'ज्ञान वाटिका' की कलियाँ दूर दूर तक के बच्चों को अपनी मनोहर महक से अनुप्राणित और आकृष्ट कर सकेंगी।

दि० जैन संस्कृत कालेज,
जयपुर
दिनांक ५-१२-५८

पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ

अनुक्रमणिका

अनमोल वाणी-'वीर वाणी' के कुछ दिव्य रत्न, भिक्षु वाणी की कुछ अमूल्य निधियां, 'तुलसी वाणी' के कुछ मौलिक तथ्य ।

परि की सूची

❀ सहायक सामग्री ❀

१—कल्याण (सत्कथा अंक)
२—जीव अजीव
३—जैन तत्त्व प्रवेश
४—जैन भारती के कुछ अङ्क
५—जैन सिद्धान्त दीपिका
६—जैनागम दीपिका
७—तत्वार्थ सूत्र (पं० सुखलालजी)
८—निर्ग्रंथ प्रवचन भाष्य
९—प्रश्न प्रकाश

ज्ञान-वाटिका

प्रथम कलिका

हम कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? कहाँ जायेंगे ? यह जगत क्या है ? हमें क्या करना चाहिए ? हमारा आचार विचार कैसा होना चाहिए ?

"आचार्य श्री तुलसी"

ये वे प्रश्न हैं जो हर एक आस्तिक व्यक्ति के मन में उथल पुथल मचाये बिना नहीं रहते। बस इसी चिन्तन में लीन व्यक्ति सहसा कह उठता है, "मैं ढूंढ़ रहा हूँ, मैं क्या हूँ पर पता नहीं पाया मैं क्या हूँ", प्रस्तुत उपक्रम इसी की खोज मात्र है।

प्रश्न १—मैं कौन हूँ ?

उत्तर—मैं आत्मा हूँ।

प्रश्न २—आत्मा किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञान दर्शन मय शाश्वत द्रव्य को आत्मा कहते हैं। भले ही आँखों से आत्मा दिखलाई न दे फिर भी यह जो बोलने वाला, खट्टा-मीठा बताने वाला और आत्मा का विधि-निषेध करने वाला है, वही आत्मा है। जिसे 'मैं' और 'मेरा' इस प्रकार का

ज्ञान होता है वही आत्मा है। सुख, दुख का ज्ञान आत्मा ही करता है, क्योंकि वस्तु तत्व को सही समझना ही तो ज्ञान है।

प्रश्न ३—ज्ञान कितनी प्रकार के हैं ?

उत्तर—वास्तव में सम्पूर्ण ज्ञान "केवल ज्ञान" एक ही तरह का होता है। किन्तु कर्मों के आवरण भेद से इसके भी पाँच भेद हो जाते हैं, जैसे सोने का एक पासा (चौरस पासा) मिट्टी में ढका हुआ है, उसके एक कोने से मिट्टी हट जाने पर एक पासा है ऐसा दीखने लगता है, दूसरे कोने से हटने पर दो दीखते हैं ऐसे ही ३ और ४ भी; अन्त में सम्पूर्ण मिट्टी हट जाने पर वह एक ही दीखने लगता है। वैसे ही मिट्टी; ज्ञान को रोकने वाला कर्म (ज्ञानावरण) है। वह ज्ञान शक्ति रूप पासे से जितने अंशों में हटती है उतने ही अंशों में ज्ञान का विकास और भेद मालूम पड़ता है, इसके ५ भेद हैं:—**१. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान और ५. केवलज्ञान।**

प्रश्न ४—मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय और मन की सहायता से होनेवाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं। इसके मुख्यतया ४ भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

प्रश्न ५—अवग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—दर्शन के बाद होनेवाला प्राथमिक ज्ञान अवग्रह है जैसे-अन्धकार में कुछ स्पर्श होने पर 'लगा है', ऐसा ज्ञान होना। इसके व्यजंनावग्रह और अर्थावग्रह ये दो भेद हैं।

व्यञ्जनावग्रह-पदार्थ का इन्द्रिय से संयोग होना व्यजंनावग्रह

है। यह मन और नेत्रों के सिवाय ४ इन्द्रियों से होता है। संयोग होने के बाद उसका ज्ञान होना अर्थावग्रह है। यह सब इन्द्रियों से होता है।

ईहा-(विचारणा) स्पर्श के बाद यह रस्सी होनी चाहिए, ऐसा सोचना ईहा है।

अवाय-(निश्चय) तर्क वितर्क के बाद यह निश्चय करना कि यह रस्सी ही है; सॉप नहीं, क्योंकि यदि सॉप होता तो काट खाता।

धारणा-निश्चय ज्ञान का चिरस्थाई संस्कार धारणा है। जिसे स्मृति भी कहते हैं।

जाति स्मरण ज्ञान-(पूर्व भव का स्मरण करनेवाला ज्ञान) भी मतिज्ञान का एक भेद है।

प्रश्न ६—श्रुत ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—मतिज्ञान जब शब्द या संकेत द्वारा समझाने में समर्थ हो जाता है तो उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। अक्षर रूप जितने भी शास्त्र हैं वे सब इसी में आते हैं। इसके अक्षर श्रुत आदि १४ भेद हैं।

प्रश्न ७—अवधि ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो ज्ञान केवल आत्मशक्ति से (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की) मर्यादा (अवधि) पूर्वक रूपी पदार्थों को जानता है उसे अवधि ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान नारकी और देवता में जन्म के साथ होता है। शेष जीवों में विशेष योग्यता होने पर।

प्रश्न ८—मनः पर्यव ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मिक शक्ति से प्राणियों के मनोभावों को जानना मनः पर्यव ज्ञान है। इसके भी दो भेद हैं। ऋजुमति (कुछ अस्पष्ट), विपुल मति (स्पष्ट) ऋजुमति वापिस जा सकता है विपुल मति नहीं जाता। यद्यपि अवधि और मन. पर्यव दोनों ही रूपी द्रव्यों को देखनेवाले हैं तथापि अन्यान्य अन्तरों के साथ एक मुख्य अन्तर यह भी है कि अवधि ज्ञान के स्वामी चारों गतिवाले हो सकते हैं, पर मनः पर्यव के स्वामी सिर्फ संयत मनुष्य ही होते हैं।

प्रश्न ९—केवल ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों व पर्यायों को जाननेवाला ज्ञान केवल ज्ञान कहलाता है। इन पांचों ज्ञानों को साकार उपयोग (विशेष ज्ञान) भी कहते हैं।

प्रश्न १०—अनाकार उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रत्येक ज्ञान सामान्य व विशेष दो प्रकार का होता है। सामान्य को जानने वाला अनाकार उपयोग अर्थात् दर्शन कहलाता है।

प्रश्न ११—दर्शन के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दर्शन के चार भेद हैं (१) चक्षु दर्शन (२) अचक्षु-दर्शन (३) अवधि दर्शन (४) केवल दर्शन।

(१) चक्षु दर्शन—आंखों के द्वारा होनेवाला वस्तु का सामान्य बोध।

(२) अचक्षु दर्शन—आँखों के सिवाय शेष सब इन्द्रियों व मन से होनेवाला सामान्य बोध।

(३) अवधि दर्शन—अवधि ज्ञान का सामान्य बोध।

(४) केवल दर्शन—केवल ज्ञान का सामान्य बोध।

मनः पर्यव से सिर्फ मन की अवस्थायें जानी जाती हैं और वे अवस्थाये विशेष ही होती हैं, इसलिए मनः पर्यव दर्शन नही होता।

प्रश्न १२—क्या सभी जीवों को दर्शन और ज्ञान होता है?

उत्तर—दर्शन व ज्ञान सभी जीवों में पाया जाता है, परन्तु कई जीवों का ज्ञान अज्ञान भी कहलाता है।

प्रश्न १३—ज्ञान व अज्ञान में क्या भेद है?

उत्तर—सम्यक्त्वी का जानना तो ज्ञान है।
और अज्ञान के दो अर्थ हैं—ज्ञान का अभाव–अज्ञान और मिथ्यात्वी का ज्ञान अज्ञान। यहाँ पात्र भेद से ही मिथ्यात्वी के ज्ञान को–अज्ञान माना गया है।

मनः पर्यव और केवल ज्ञानी सम्यक्त्वी (साधु) ही होते हैं अतः उनका ज्ञान अज्ञान नहीं हो सकता।

द्वितीय कलिका

मति ज्ञान का होना इन्द्रिय और मन की सहायता से बत-लाया गया है अतः यह प्रश्न भी स्वाभाविक है कि इन्द्रिय और मन क्या हैं ?

प्रश्न १—इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा जिन साधनों के द्वारा स्पर्श, रस आदि का अनुभव करता है उन साधनों को इन्द्रिय कहते हैं। वह दो प्रकार की हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

प्रश्न २—द्रव्येन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—पुद्गलों से बनी हुई इन्द्रिय को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। इसके भी दो भेद हैं:—

(१) निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय—नाक कान आदि की बाहरी व भीतरी रचना।

(२) उपकरण द्रव्येन्द्रिय—विषय का ग्रहण करने वाली पुद्गल मय शक्ति। जैसे, चाकू (निर्वृत्ति) और काटने की शक्ति (उपकरण)।

प्रश्न ३—भावेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान करने वाली आत्मिक शक्ति को भावेन्द्रिय कहते हैं। यह लब्धि व उपयोग रूप है।

(१) लब्धि भावेन्द्रिय—विषय को जानने की आत्मिक शक्ति की प्राप्ति।

(२) उपयोग भावेन्द्रिय—प्राप्त हुई आत्म-शक्ति की प्रवृत्ति (उपयोग)। जैसे चाकू का खरीदना (लब्धि) और उससे काटना (उपयोग)।

प्रश्न ४—इन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर—इन्द्रियाँ ५ हैं।

(१) स्पर्शनेन्द्रिय—स्पर्श का ज्ञान करने वाली, जैसे त्वचा आदि।

(२) रसनेन्द्रिय—रस का ज्ञान करने वाली जैसे—जीभ।

(३) घ्राणेन्द्रिय—गंध का ज्ञान करने वाली जैसे—नाक।

(४) चक्षुइन्द्रिय—रूप का ज्ञान करनेवाली जैसे—आँख।

(५) श्रोत्रेन्द्रिय—शब्द का ज्ञान करनेवाली जैसे—कान।

प्रश्न ५—इन्द्रियां किसे जानती हैं?

उत्तर—प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने नियत विषय (जानने योग्य वस्तु) का ज्ञान करती है; जैसे—

स्पर्शनेन्द्रिय—आठ प्रकार के स्पर्श का ज्ञान करती है, जैसे (१) ठण्डा (२) गर्म (३) रूखा (४) चिकना (५) हल्का (६) भारी (७) कोमल (८) खुरदरा।

रसनेन्द्रिय—५ प्रकार के रस का ज्ञान करती है (१) खट्टा (२) मीठा (३) तीखा (४) कड़वा (५) कसेला।

घ्राणेन्द्रिय—दो प्रकारकी गन्धका ज्ञान करती है-(१) सुगन्ध (२) दुर्गन्ध।

चक्षुइन्द्रिय—पांच प्रकार के रूप (रंग) को पहचानती है-(१) काला (२) पीला (३) नीला (४) लाल (५) सफेद।

श्रोत्रेन्द्रिय—तीन प्रकार के शब्द (आवाज) का ज्ञान करती है।

१. जीवशब्द— प्राणियों की आवाज।

२. अजीव शब्द—अजीव वस्तु का शब्द जैसे किवाड़ों की खड़खड़ाहट, बादलों की गड़गड़ाहट।

३. मिश्र शब्द—अजीव एवं जीवित वस्तुओं का मिला हुआ स्वर जैसे बांसुरी की ध्वनि।

इन्हें पांच इन्द्रियों के २३ विषय कहते हैं।

प्रश्न ६—क्या इन्द्रियां ५ ही हैं?

उत्तर—ज्ञानेन्द्रियां ५ ही हैं तथापि कई पांच और भी मानते हैं जैसे-वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ। किन्तु वे कर्मेन्द्रियां हैं। ज्ञानेन्द्रियां तो ५ ही हैं।

प्रश्न ७—नेत्रहीन व्यक्ति के इन्द्रियां कितनी हैं?

उत्तर—इन्द्रियां तो ५ ही हैं परन्तु उसके द्रव्येन्द्रिय में कुछ कमी होने से देखा नहीं जा सकता।

इन्द्रियों की प्राप्ति का क्रम यों है—लब्धि (आत्मशक्ति) से निर्वृति और फिर उपकरण और फिर उपयोग होना संभव है। ऐसे ही बहरे व गूंगे के विषय में जानना चाहिए।

प्रश्न ८—क्या सभी जीवों के ५ इन्द्रियाँ होती हैं ?

उत्तर—हाँ बीज रूप (शक्ति की अपेक्षा) सभी जीवों के होती है, लेकिन विकसित रूप से किसी जीव के एक, किसी के दो, तीन, चार व पाँच इन्द्रियाँ होती हैं।

प्रश्न ९—एकेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके एक-स्पर्श इन्द्रिय है उसे एकेन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न १०—एकेन्द्रिय वाले जीव कौन कौन से हैं ?

उत्तर—ये पाँच हैं—(१) **पृथ्वीकाय**—पृथ्वी ही जिनका शरीर है वे पृथ्वीकायिक कहलाते हैं जैसे—मिट्टी, पत्थर हिंगलू, हीरा, कोयला, सोना, चाँदी नमक आदि।

(२) **अप्काय**—जल ही जिनका शरीर है वे अपकायिक जीव कहलाते हैं। जैसे समुद्र, तालाब, नदी, बरसात, ओस, झील, धुंअर, कुआं आदि का पानी।

(३) **तेजस्काय**—अग्नि ही जिनका शरीर है वे जीव तेजस्कायिक कहलाते हैं। जैसे—काठ व कोयले की अग्नि, बिजली, उल्कापात आदि।

(४) **वायुकाय**—हवा जिनका शरीर है वे जीव वायुकायिक कहलाते हैं।

(५) **वनस्पतिकाय**—सब्जी (वनस्पति) रूप जिनका शरीर है वे जीव वनस्पतिकायिक कहलाते हैं। जैसे—दूब, वेल, वृक्ष, फल फूल आदि।

इनके दो भेद हैं—(१) प्रत्येक (२) साधारण।

प्रश्न ११—प्रत्येक और साधारण का अर्थ क्या है ?

उत्तर—जिस बनस्पति के एक शरीर में एक जीव हो, उसे प्रत्येक शरीरी वनस्पति कहते हैं, जैसे—आम, नीम, दूब, चम्पा, चमेली, ईख अमरूद आदि। अर्थात् एक मूल जीव (बीज) के आश्रय पर दूसरे अनेक जीव रह सकते हैं, जैसे एक अमरूद के बीज में अनेक अमरूद व उसके अनेक बीज रह सकते हैं, किन्तु मूल जीव (जड़ या बीज) के सूखने पर सब सूख जाते हैं। **साधारण**—जिस एक शरीर में अनन्त जीव रहते हों और जिनका जन्म, मरण, आहार, श्वासोच्छ्वास एक सामान और एक साथ है। उसे साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं। जैसे आलू, लहसुन, हल्दी, अदरक, नये कोमल पत्ते आदि।

प्रश्न १२—सूक्ष्म बादर किसे कहते हैं।

उत्तर—जो आँखों से देखे जा सके उन्हें बादर और जो विशेष ज्ञान द्वारा जाने जा सके, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं। स्थावर जीव सूक्ष्म व बादर दोनों प्रकार के होते हैं।

प्रश्न १३—त्रस व स्थावर किसे कहते हैं।

उत्तर—जो जीव अपने हित की प्रवृत्ति एवं अहित की निवृत्ति के लिए हलन-चलन कर सकते हैं, उन्हें त्रस जीव कहते हैं और जो हलन, चलन नहीं करते वे स्थावर हैं। स्थावर जीव—पृथ्वी पानी, अग्नि, हवा, सब्जी आदि। त्रस जीव द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, **पंचेन्द्रिय ये ४ हैं।**

(१) **द्वीन्द्रिय**—जिन जीवों के स्पर्श और रसन ये दो इन्द्रियाँ हैं वे द्वीन्द्रिय हैं, जैसे, लट, कीड़े, कृमि, सीप आदि।

(२) **त्रीन्द्रिय**—जिन जीवों में ऊपर की दो और एक

घ्राण (नाक) ये तीन इन्द्रियाँ हैं वे त्रीन्द्रिय हैं। जैसे चींटी, जूं, लीख, आदि।

(३) चतुरिन्द्रिय—जिन जीवों के श्रोत्रेन्द्रिय रहित इन्द्रियाँ हैं वे चतुरिन्द्रिय हैं, जैसे, मक्खी बिच्छू आदि।

(४) पंचेन्द्रिय—जिन जीवों के पांचों इन्द्रियाँ हैं वे पंचेन्द्रिय हैं। जैसे, मगर, गाय भैंस, तोता, मनुष्य, देवता, नारक आदि।

प्रश्न १४—मन किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे विचार किया जा सके ऐसी आत्मिक शक्ति को मन कहते हैं आत्मशक्ति को भाव मन और इस शक्ति के विचार करने में सहायक होने वाले एक प्रकार के सूक्ष्म परमाणुओं को द्रव्य मन कहते हैं।

भाव मन तो सभी जीवों के होता है किन्तु द्रव्य मन की अपेक्षा जीव दो प्रकार के हैं—(१) संज्ञी—जिन जीवों में विचार विमर्श की शक्ति हो वे समनस्क,—संज्ञी कहलाते हैं। (२) शेष असंज्ञी।

तृतीय कलिका

प्रश्न १—जीवों के मुख्य विभाग कितने हैं ?

उत्तर—मुख्य विभाग चार हैं, इन्हें चार गति भी कहते हैं।

प्रश्न २—गति का क्या अर्थ है ?

उत्तर—गति का अर्थ है चलना अर्थात् आत्मा के एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने को गति कहते हैं और जिस स्थानान्तर में जाती है उस स्थान को भी गति कहते हैं। जैसे नरक में जाने पर नरक गति।

प्रश्न ३—नरक गति किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ प्राणी अपने घोर पाप कर्मों का फल भुगतता है, उस स्थान को नरक गति कहते हैं।

प्रश्न ४—नरक गति का विशेष वर्णन क्या है ?

उत्तर—नीचे लोक में (अधोलोक) में ७ पृथ्वियाँ हैं जो एक-दूसरे के नीचे नीचे आई हुई हैं। उनके सात नाम हैं:—

१. **रत्न प्रभा** (रत्न अधिक होने से)
२. **शर्करा प्रभा** (कंकड़ अधिक होने से)
३. **बालुका प्रभा** (बालू के अधिक होने से)
४. **पंक प्रभा** (कीचड़ के अधिक होने से)
५. **धूम प्रभा** (धुवें के अधिक होने से)

६. तमः प्रभा (अंधेरे की अधिकता से)

७. महा तमः प्रभा (घोर अंधेरे की अधिकता से)

इनमें जिस जिस चीज की अधिकता है उसी नाम से वे प्रसिद्ध हो गई हैं। किन्तु ये तो उनके गोत्र कहे जाते हैं इनके नाम ये हैं–धम्मा, वंशा, शैला, अञ्जना, रिठ्ठा, मघा और माघवती इनमें रहने वालों को नारक या नारकीय कहते हैं।

प्रश्न ५—नारकों को दुःख कैसा होता है ?

उत्तर—नरक में वेदना तीन प्रकार की है:—(१) क्षेत्र जन्य (२) परस्पर जन्य (३) देव कृत।

(१) क्षेत्र जन्य—वह स्थान ही ऐसा है जहाँ भयंकर भूख-प्यास, सर्दी गर्मी, अंधेरा, दुर्गन्ध आदि हैं।

(२) परस्पर जन्य—नैरायिक जन्मतः अधिक झगड़ालु होने के कारण एक दूसरे को देखते ही, मारपीट करने लग जाते हैं, यह परस्पर जन्य वेदना है।

(३) देव कृत—परमा धार्मिक देवकृत वेदना केवल पहली तीन भूमियों में होती है क्योंकि परमाधार्मिक केवल तीन भूमियों तक ही जाते हैं।

प्रश्न ६—परमाधार्मिक कौन हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—परमाधार्मिक एक प्रकार के असुर देव हैं जो बहुत क्रूर स्वभाव वाले और पापरत होते हैं, इनकी १५ जातियाँ हैं। इन्हें दूसरों को लड़ाने भिड़ाने व सताने में ही आनन्द आता है—वे नारकों को परस्पर लड़ाते रहते हैं।

प्रश्न ७—क्या सब नरकों में दुःख समान है?

उत्तर—नहीं, ज्यो-ज्यों आगे जाते हैं; त्यों-त्यों उनकी लेश्या, परिणाम बुरे (अशुभ) से बुरे होते हैं। शरीर भी अधिक से अधिक दुर्गन्ध आदि से डरावना होता है। वेदना भी आगे से आगे भयंकर होती है। सुख के लिए जो भी करते हैं उसमें उल्टा दुःख ही पल्ले पड़ता है—ये सब बाते नरक में क्रम से बढ़ती जाती हैं।

प्रश्न ८—क्या नरक में कभी सुख की घड़ी आती है?

उत्तर—हाँ! तीर्थङ्करों के जन्म, केवल ज्ञान, आदि २ अवसरों पर नरक में सुख की लहर दौड़ती है। कुछ अन्य कारणों से भी उनका बैर विरोध मिट सकता है जैसे—सीतेन्द्र के प्रयत्न से हुआ।

प्रश्न ९—नरक के विषय में अन्यान्य शास्त्रों की क्या मान्यता है?

उत्तर—वैदिक ग्रंथों[1] में सात नरक माने गये हैं—रौरव, महारौरव, तम, निकृन्तन, अप्रतिष्ट, असिपत्रवन, तप्त-कुंभ, इन सात नरकों के ऊपर सात पाताल हैं—महातल, रसातल, तलातल, सुतल, वितल, तल और पाताल[2]। इन नरकों में प्राणी अत्यन्त दुःख भोगता है, जिन पर धर्मराज और चित्रगुप्त की खास देख-रेख रहती है।

बौद्ध शास्त्रों में ६ लोक माने गये हैं जिनमें से एक नरक लोक है जहां संजीव, काल सूत्र, संघात, रौरव, महारौरव, तपन, प्रतापन और अवीचि ये ८ मुख्य नरक हैं। सब नरकों की लम्बाई

---

१. मारकंडेय पुराण १२-१३-५२ २. पद्मपुराण पाताल खंड १-२-३

चौड़ाई और ऊंचाई १० हजार योजन की है। अवीचि नरक सबसे भयंकर है[1]।

मुसलमानों ने (दोजख) के ७ दरवाजे माने हैं[2]। और जो २ अभागे हैं वे नरक में होंगे और उनको चिल्लाना और दहाड़ना पड़ेगा[3]। खुदा फैसला करके पापियों को नरक में भेजता है।

प्रश्न १०—तिर्यञ्च किसे कहते हैं? और कौन २ हैं?

उत्तर—देव, नारक और मनुष्य को छोड़ कर बाकी के सभी संसारी जीव तिर्यञ्च कहे जाते हैं। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीड़े मकोड़े, मक्खी मच्छर, सांप, मगर और हाथी आदि सब जन्तुओं को तिर्यञ्च कहते हैं। इनमे एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों का समावेश है।

प्रश्न ११—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के कितने भेद हैं?

उत्तर—तीन भेद १. जलचर २. स्थलचर ३. नभचर।

(१) जलचर—जलमें चलनेवाले जैसे—मछली, मगर, कछुवा आदि।

(२) स्थलचर—भूमि पर चलनेवाले, ये दो प्रकार के होते हैं।

(क) चतुष्पाद—(चौपाये) जैसे—घोड़ा, गाय, हाथी, कुत्ता, बिल्ली आदि।

(ख) परिसर्प—रेंग कर चलनेवाले जैसे—सर्प, नेवला, चूहा आदि।

(३) नभचर—आकाश में उड़नेवाले जीव जैसे—चमगीदड़, हंस, चकवा, वितत पक्षी आदि।

---

१. अभि धम्मत्थ सग्रहोः परि ५। २. हि० कुरान आ. ४३-४४।
३. हि. कुरान आ. १६।

प्रश्न १२—मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—दो प्रकार के हैं १. गर्भज. २. संमूच्छिम। संमूच्छिम मनुष्य, मनुष्य के मलमूत्र खंखार आदि चउदह स्थानों में उत्पन्न होते हैं। इनके मन नहीं होता है इसलिए ये असंज्ञी मनुष्य कहलाते हैं। मनुष्य के त्यक्तः अङ्गों से तथा विकारों से उत्पन्न होने के कारण ये मनुष्य की संज्ञा में आते हैं।

गर्भज—ये मनुष्य गर्भ में उत्पन्न होते हैं इनके मन होता है इसलिए इनको संज्ञी मनुष्य कहते हैं। ये दो प्रकार के हैं—१. कर्म भूमिक २. अकर्म भूमिक।

प्रश्न १३—कर्म भूमिक मनुष्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—१ असि (तलवार) आदि से रक्षा करके २ मसि (स्याही) आदि से लिख करके (बनिये, क्लर्क, व्यापारी) ३ कृषि खेती करके, तथा किसी भी प्रकार का कर्म करके जो जीवन चलाते हैं वे कर्म भूमिक मनुष्य कहलाते हैं। ये १५ कर्म भूमियों (भोग भूमि) में ही रहते हैं।

प्रश्न १४—अकर्म भूमिक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीवन यापन के लिए कुछ भी कर्म न करके कल्प वृक्षों के सहारे ही जीते हैं, वे अकर्म भूमिक मनुष्य कहलाते हैं, इन्हें युगलिया भी कहते हैं।

प्रश्न १५—युगलियों का विशेष वर्णन क्या है ?

उत्तर—ये स्त्री पुरुष के युगल रूप में (जोड़े के रूप में) जन्मते हैं, दोनों साथ २ रहते हैं। दस प्रकार के कल्प वृक्षों से इनकी इच्छापूर्ति होती है। युगल संतान (जोड़ा) होने के ४६ दिन बाद दोनों (माता-पिता) आयुष्य पूर्ण करके स्वर्ग जाते हैं। इनकी

भावनायें बड़ी सरल व शान्त रहती है। ५६ अन्तर्द्वीप, देवकुरु, उत्तरकुरु आदि ३० अकर्म भूमियां इनका जन्म व निवास स्थान है।

प्रश्न १६—मनुष्य लोक कहाँ है ?

उत्तर—पहली नारक पृथ्वी के ऊपर असंख्य द्वीप समुद्र हैं। उनमें सबसे छोटा, थाली आकार का जम्बूद्वीप है। जिसमें हम सभी रहते हैं, उसके बाहर लवण समद्र है। लवण समुद्र के बाहर धातकी खण्ड द्वीप है। उसके बाहर कालोदधि समुद्र है और फिर पुष्कर द्वीप है। पुष्कर द्वीप के आधे भाग तक मनुष्य है अर्थात् जम्बूद्वीप धातकी खण्ड व अर्द्ध पुष्करद्वीप में मनुष्यों का निवास है, और इसी का नाम मनुष्य लोक है।

प्रश्न १७—क्या मनुष्य के पूर्वज बन्दर थे ?

उत्तर—विकास वाद के अनुसार "सूर्य से टूटी हुई पृथ्वी जब ठंडी हुई तो क्रमशः अणुगुच्छक बने, विक्टीरिया अस्तित्व में आये, फिर हलवे जैसे बिना हड्डी के जन्तु अमोयबा, फिर वनस्पति व अन्य जंगम प्राणी, उनके बाद मछलियाँ आदि प्राणी आये, फिर वाणी उनके मुंह से फूट निकली, स्तनधारी बानर, बन मानुष और वन मानुष से आधे वन मानुष, आधे मानव द्विपद, झाड़ियों में किलकिलाने लगे। उन्हीं में से कुछ जोड़े विकास की उस अवस्था में पहुँच गये जहां जाति परिवर्तन (Mutation) होता है और इस प्रकार वे हमारे मानव वंश के आदिम पूर्वज बने[1]"। प्रयोगवादी विज्ञान की ये बातें निरी प्रयोग शून्य कल्पना सी मालूम होती है। अगर बन्दर या वन मानुष से मनुष्य बना तो उसकी पूंछ कहां गायब हो गई ? विज्ञान उत्तर देता है, "चिम्पाजी ज्यों ज्यों वृक्षों को छोड़कर धरतीपर बैठने का आदि हुआ पूंछ घिसते २ खतम ही हो गई"।

---

१. मानव समाज पृष्ठ १.

कैसा अजीब जवाब ! वन मानुष से मनुष्य बना तो मनुष्य से आगे विकास रुक क्यों गया ? ऐसे अनेक प्रश्न उठते हैं जिनका सही समाधान न करने के कारण ही विकास वाद अब वैज्ञानिक जगत से अन्तिम सांस गिन रहा है। जैन दर्शन मनुष्य जाति की उत्पति व अन्त नहीं मानता है। अतः मनुष्य के पर्वज कौन थे यह प्रश्न ही नहीं रह जाता है।

प्रश्न १८—देवगति क्या है ?

उत्तर—जैसे नरक में अशुभ कर्मों का फल भोगा जाता है वैसे ही देवलोक में प्रायः शुभ कर्मों का फल भोगा जाता है। जिनके ४ भेद हैं १. भवनपति २. व्यन्तर ३. ज्योतिषी और ४. वैमानिक। भारत के धर्म—जैन, बौद्ध, वैदिक इन्हें स्वर्ग, देवलोक या ब्रह्मलोक कहते हैं। मुसलमानों के विश्वास के अनुसार स्वर्ग में रहने को बाग और खाने पीने को अंगूर, खजूर, अंजीर व मदिरा मिलती है। क्रिश्चियन लोग सात स्वर्ग मानते हैं।

प्रश्न १९—भवनपति किसे कहते हैं ?

उत्तर—भवनों में रहनेवाले देव भवनपति कहलाते हैं, इनके भेद हैं—१. असुर कुमार २. नागकुमार ३. सुपर्णकुमार ४. विद्युत् कुमार ५. द्वीप कुमार ६. अग्निकुमार ७. उदधि कुमार ८. दिग् कुमार ९. वायुकुमार १०. स्तनित कुमार। ये बड़े मनोहर व सुकुमार होते हैं तथा क्रीड़ाशील होने से कुमार कहलाते हैं।

प्रश्न २०—भवन कहाँ हैं ?

उत्तर—अधो लोक में पहली नरक भूमि के १२ आंतरें और १३ पाथड़े (प्रस्तर) हैं। पाथड़ों में नारक रहते हैं, १२ आंतरों में से ऊपर के दो आंतरों को छोड़ कर शेष १० आंतरों पर भवनपतियों के भवन बने हैं। भवन एक प्रकार के नगर ही हैं।

प्रश्न २१—व्यन्तर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो देव विविध पहाड़ों गुफाओं, बनों आदि के अन्तरों (संधि स्थलों) पर क्रीड़ा करते रहते हैं वे व्यन्तर कहलाते हैं। यह यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि ८ बड़े और ८ छोटे इस तरह १६ प्रकार के होते हैं।

प्रश्न २२—ज्योतिपी देवता किसे कहते हैं ?

उत्तर—चन्द्रमा, सूर्य ग्रह, नक्षत्र और तारे इन सब को ज्योतिपी देव कहते हैं। ये ज्योतिपमान (प्रकाश युक्त) होने के कारण ज्योतिपी कहलाते हैं। इसमें चन्द्र, सूर्य तो इन्द्र हैं और ग्रह, नक्षत्र व तारे इनकी प्रजा है। मनुष्य क्षेत्र के अन्दर तो चन्द्र, सूर्य के प्रकाशमान विमान घूमते रहते हैं। व बाहर स्थिर है और वहीं पर इनकी राजधानियाँ हैं। जहाँ चन्द्रमा स्थिर रूप में है वहाँ सदा पूर्णिमा की रात होती है और जहाँ सूर्य है वहाँ सदा दिन।

प्रश्न २३—क्या सूर्य व चन्द्रमा सम्बन्धी वैज्ञानिक मान्यतायें सत्य हैं ?

उत्तर—आज के वैज्ञानिक सूर्य व चन्द्रमा के बारे में अनेक कल्पनाएं कर रहे हैं वे मानते हैं कि आज से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व किसी अन्धाधुन्ध चलने वाले तारे ने अपने सूर्य से टकरा कर ज्वार पैदा किये होंगे, एक भयंकर लहर सूर्य की समूची सतह पर फैल गई होगी, लहर ने कल्पनातीत ऊंचे पर्वत का रूप लिया होगा और फिर कई कारणों से उस पर्वत ने अपने छोटे टुकड़ों को दूर फेंक दिया जो सूर्य के चारों ओर घूमने लगे, वे ही छोटे बड़े ग्रह हैं जिनमें चन्द्रमा व पृथ्वी भी ग्रह है।

ये सब अटकलें सी लगाई गई हैं जिनका कल्पनाओं के अलावा और क्या आधार हो सकता है? कुछ वैज्ञानिक पृथ्वी की तरह सूर्य को भी किसी महाग्रह की परिक्रमा करते हुए चर मानते हैं। वास्तव में सूर्य आग का धधकता हुआ गोला नहीं है और न चन्द्रमा पृथ्वी से टूटा हुआ उपग्रह है[1]।

प्रश्न २४—वैमानिक देव किसे कहते है तथा कहाँ है?

उत्तर—विमानों में रहने वाले देव वैमानिक कहलाते है। ये विमान उर्ध्व लोक में हैं, इनके दो भेद है कल्पोपन्न व कल्पातीत।

प्रश्न २५—कल्पोपन्न किसे कहते हैं?

उत्तर—कल्प नाम है १२ देवलोक का वहाँ उत्पन्न होनेवाले कल्पोपन्न कहलाते हैं।

कल्प (देवलोक) १२ हैं, जैसे सौधर्म कल्प, ईशान कल्प, सनत्कुमार कल्प, माहेन्द्र कल्प, ब्रह्म कल्प, लान्तक कल्प, महाशुक्र कल्प, सहस्त्रार कल्प, आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प। इनमें इन्द्र, सामानिक, आभियोग्य (सेवक) किल्वीषिक आदि स्वामी सेवक और छोटे-बड़े का सम्बन्ध रहता है।

प्रश्न २६—देवताओं में स्वामी सेवक का क्या भेद है?

उत्तर—इनमें १० तरह का भेद है।

(१) इन्द्र—सभी देवों पर शासन (राज्य) करने वाले इन्द्र कहलाते हैं। ६४ हैं—भवनपति के २०, व्यन्तर के ३२, ज्योतिषी के २ वैमानिकों के १०।

---

१. जैन भारतीवर्ष ३ अंक ३६ ता० २५-६-५५।

(२) सामानिक—ये इन्द्र नहीं होते हैं किन्तु इनकी मान प्रतिष्ठा इन्द्र के समान होती है।

(३) त्रायस्त्रिंश—मन्त्री आदि का काम करते हैं (गुरू स्थानीय)।

(४) पारिषद्य—इन्द्र सभा के सदस्य।

(५) आत्मरक्षक—इन्द्र की रक्षा करने वाले (Body Guard.)

(६) लोकपाल— सीमा रक्षक।

(७) अनीक—सेनापति।

(८) प्रकीर्णक—नागरिक।

(९) आभियोग्य—सेवा करने वाले।

(१०) किल्वीषिक—सफाई आदि का काम करने वाले।

प्रश्न २७—कल्पातीत किसे कहते हैं ?

उत्तर—ये बारह कल्पों (देव लोक) से ऊपर रहते है इनमें किसी प्रकार के स्वाम सेवक का सम्बन्ध नहीं होने से इन्हें 'अहमिन्द्र' कहते हैं। सभी स्वतन्त्र होते हैं। इनमें राग-द्वेष, मोह आदि की मात्रा बहुत कम होती है, ये सब ग्रैवेयक (जो नौ है) और पॉच अनुत्तर विमान जो पॉच है (विजय, विजयन्त, जयन्त अपराजित और स्वार्थसिद्ध) में रहते हैं।

प्रश्न २८—देवताओं के सुख क्या हैं ?

उत्तर—एक तो उनका स्थान बड़ा सुन्दर और सुखकारी है, फिर देवता मन चाहे जैसी वस्तुयें बना कर सुख भोग सकते हैं।

ऊपर ऊपर के देवता अधिक सुखी होते हैं। नीचे नीचे के देवों से ऊपर २ के देव ७ बातों में अधिक (विशेष) होते हैं:—

१. स्थिति-जीवन काल २. प्रभाव ३. सुख ४. द्युति (सौन्दर्य) ५. लेश्या की विशुद्धता ६. इन्द्रिय शक्ति ७, अवधिज्ञान का विषय।

चार बातें नीचे की अपेक्षा ऊपर के देवों में कम पाई जाती हैं:—

१. गमन क्रिया (शक्ति और प्रवृत्ति)।

२. शरीर का परिमाण।

३. परिवार आदि।

४. अभिमान।

चतुर्थ कलिका

प्रश्न १—जन्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—संसारी जीव एक भव से दूसरे भव में आकर जहां पहले पहल स्थूल शरीर के लिए पुद्‌गलों को ग्रहण करते हैं वह जन्म कहलाता है। सब जीवों का जन्म एक सा नहीं होता है। इसलिए जन्म के तीन भेद है—(१) गर्भ (२) उपपात (३) संमूर्च्छन।

प्रश्न २—गर्भ जन्म का क्या अर्थ है ?

उत्तर—उत्पत्ति स्थान में स्थित शुक्र और शोणित के पुद्‌-गलों को पहले पहल शरीर के लिए ग्रहण करना, गर्भ जन्म है। जैसे—माता-पिता के संयोग से पैदा होना। गर्भ से जन्मे को गर्भज कहते हैं। गर्भज तीन प्रकार के हैं—

१. जरायुज २. अंडज ३. पोतज।

१—जरायुज-जरायु-एक प्रकार का रक्त व मांस का जाल सा होता है जिसमें पैदा होनेवाला बच्चा लिपटा रहता है, जो उस जरायु में जन्मता है वह जरायुज कहलाता है जैसे-मनुष्य, भैंस, गाय, बकरी आदि।

२—अण्डज-अण्डे से पैदा होनेवाले अण्डज कहलाते हैं जैसे-सांप, मोर, मुर्गी, चिड़िया आदि।

३—पोतज—जो बिना किसी जाल व अण्डे के खुले अङ्गों सहित पैदा होता है—जैसे हाथी, खरगोश, चूहा आदि।

प्रश्न ३—उपपात जन्म का क्या अर्थ है ?

उत्तर—उत्पति स्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों को पहले पहल शरीर के लिए ग्रहण करके जन्मनेवाले का उपपात जन्म कहलाता है जैसे—देव, नारक। देवता, पुष्प शैय्या में और नारक वज्रमय कुम्भी में पैदा होते हैं।

प्रश्न ४—सम्मूर्च्छिम का क्या अर्थ है ?

उत्तर—वे जीव जो स्त्री पुरुष के संयोग के विना पैदा होते हैं वे संमूर्च्छिम कहलाते हैं। जैसे—मकड़ी, चींटी, भ्रमर, लट, मनुष्य (संमूर्च्छिम) आदि।

प्रश्न ५—जीव (आत्मा) मृत्यु के बाद परभव में कैसे जाता है ?

उत्तर—दूसरे जन्म के लिए जीव गमन या यात्रा करता है उसको अन्तराल गति कहते हैं, उसके दो भेद हैं—ऋजु और वक्र।

(१) ऋजु गति—सीधी गति जैसे धनुष से छूटा हुआ बाण सीधा जाता है, वैसे शरीर से छूटा हुआ जीव सीधा जाता है, उसे ऋजु गति कहते हैं। मोक्ष जानेवाले ऋजु गति से ही जाते हैं। इसका गमन काल एक समय का है।

(२) वक्र गति—घुमाव खाकर टेढ़े जाने को वक्र गति कहते हैं। संसारी जीवों के ऋजु व वक्र दोनों ही गति हो सकती है।

इसका कालमान चार समय तक का है। इनके मध्य के दो समय में प्राणी अनाहारक रहता है तथा अनाहारी अवस्था में सिर्फ कार्मणकाययोग होता है।

इनके मध्य के दो समय में प्राणी अनाहारक रहता है तथा अनाहारी अवस्था मे सिर्फ कार्मणकाय योग रहता है।

प्रश्न ६—कार्मणकाय योग किसे कहते हैं ?

उत्तर—कार्मण शरीर की क्रिया को कार्मण योग कहते हैं। यानि जिस शरीर की क्रिया होती है उसी के नाम से योग कहलाता है। काय योग सात हैं:—

१. औदारिक काययोग।
२. वैक्रिय काययोग।
३. आहारक काययोग।
४. कार्मण काययोग।

जहाँ दो शरीरों का मिश्रण होता है, वहाँ जिसकी बहुलता होती है वहाँ वह उसके नाम से मिश्रकाय योग कहलाता है। जैसे—

१. औदारिक मिश्रकाययोग।
२. वैक्रिय मिश्रकाययोग।
३. आहारक मिश्रकाययोग।

प्रश्न ७—क्या यह जाना जा सकता है कि जीव किस गति मे गया ?

उत्तर—वैसे तो गति कर्मानुसारिणी है, तथापि कुछ बाह्य चिह्न भी है, जैसे जो जीव दोनों पैरों से निकलता है वह नरकगामी होता है। दोनों जंघाओं से निकला हुआ जीव तिर्यञ्च गति में जाता है। छाती से निकलने वाला जीव मनुष्य गति में जाता है। मस्तिष्क से निकलने वाला जीव देव गति में जाकर पैदा होता है। जो जीव सभी अङ्गों से निकलता है वह जीव सिद्धगति में जाता है।

पंचम कलिका

जन्म के बाद स्थूल शरीर की रचना होती है इसलिये आवश्यक पुद्गलों को ग्रहण करके जीव नई शक्ति का निर्माण करता है, जिसे पर्याप्ति कहते हैं। अतः पर्याप्ति का अर्थ हुआ जन्म के प्रारम्भ में पौद्गलिक शक्ति का निर्माण होना।

प्रश्न १—पर्याप्तियें कितने प्रकार की होती है?

उत्तर—पर्याप्तियें छव प्रकार की होती है—(१) आहार पर्याप्ति (२) शरीर पर्याप्ति (३) इन्द्रिय पर्याप्ति (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति (५) भाषा पर्याप्ति (६) मनः पर्याप्ति। जिस पौद्गलिक शक्ति से जैसी जैसी शक्ति बनती है, उसी के अनुसार छव पर्याप्ति के नाम है। आहार के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें रस रूप में परिणित करना (बदलना) आहार पर्याप्ति है।

प्रश्न २—शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—रस रूप में परिणित आहार का सप्त धातु के रूप में शरीर रचना की पूर्णता होना शरीर पर्याप्ति है।

प्रश्न ३—इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—अलग २ इन्द्रियों की पूर्ण बनावट इन्द्रिय पर्याप्ति है।

प्रश्न ४—श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—श्वासोच्छ्वास के योग्य पुद्गलों को लेने और

छोड़ने की पुद्गल शक्ति की पर्णता होना श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति है।

प्रश्न ५—भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—भाषा के योग्य पुद्गलों को लेने व छोड़ने की पुद्गल शक्ति की पूर्णता होना भाषा पर्याप्ति है।

प्रश्न ६—मनः पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन के योग्य पुद्गलों को लेने व छोड़ने की पुद्गल शक्ति की पूर्णता होना मनः पर्याप्ति है।

प्रश्न ७—पर्याप्त व अपर्याप्त का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जिन जीवों के जितनी २ पर्याप्तियाँ बतलाई गई हैं उतनी ही पर्याप्तियाँ पूर्ण पाने वाला जीव पर्याप्त और इनके अलावा अपर्याप्त कहलाता है। पर्याप्तियों की रचना जन्म के बाद ४८ (अड़तालीस) मिनट के भीतर २ पूर्ण हो जाती है।

प्रश्न ८—आहार कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—तीन प्रकार के होते हैं:—(१)ओज आहार (२) रोम आहार (३) कवल आहार।

ओज आहार—जन्म के पहले समय जो (शुक्र शोणित रूप) आहार लिया जाता है वह ओज आहार है इसकी शक्ति जन्म भर रहती है।

रोम आहार—शरीर के रोम कूपों (छिद्र) द्वारा जो सर्दी गर्मी रूप पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं वह रोम आहार है। जैसे, सूर्य की गर्मी से घबराया हुआ पथिक वृक्ष की छाया में शान्ति

अनुभव करता है—क्योंकि छिद्रों से ठंड के पुद्गल ग्रहण होते हैं—यह रोम आहार है।

कवल आहार—(प्रक्षेप आहार) ग्रास रूप में मुख आदि से जो ग्रहण किया जाय अथवा नली, इन्जेक्शन, आदि से प्रवेश कराया जाय—वह कवलाहार है[1]।

प्रश्न ९—शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे चलना, फिरना, खाना, पीना आदि क्रियायें हो सके, अथवा जो संसारी आत्मा का निवास स्थान हो एवं भौतिक सुख, दुःख का अनुभव कर सके उसे शरीर कहते हैं।

प्रश्न १०—शरीर कितने हैं ?

उत्तर—पॉच हैं—(१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस् (५) कार्मण।

प्रश्न ११—औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—इसकी दो परिभाषाएं हैं:—(१) जो सबसे स्थूल पुद्गलों का बना हुआ हो; हाड मांस आदि से युक्त हों तथा मरने के बाद भी पीछे रहता हो वह औदारिक शरीर है। तथा (२) जिससे मोक्ष की प्राप्ति की जा सके वह औदारिक शरीर है। यह तिर्यञ्च और मनुष्य के होता है।

प्रश्न १२—वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शरीर से छोटापन, बड़ापन आदि विविध मन-चाही क्रियायें की जा सकें उसे वैक्रिय शरीर कहते हैं, इसमें न

नोट—१ देवता को मनोभक्षी भी कहा जाता है। अर्थात् इच्छानुकूल पुद्गलो को ग्रहण करके तृप्त हो जाते है।

हाड, मांस आदि होते हैं और न मरने के बाद ही पीछे रहता है। कपूर की तरह उड़ जाता है। यह देवता व नारकी तथा वायुकाय में और तपस्यादि के कारण मनुष्य व तिर्यञ्च में भी हो सकता है।

प्रश्न १३—आहारक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर—चउदह पूर्व के ज्ञाता मुनि कोई आवश्यक कार्य होने पर एक हाथ का पुतला बना कर तीर्थङ्कर, केवली आदि के पास भेज कर अपने प्रश्नों का उत्तर मंगवाते हैं, उस पुतले में स्थित मुनि के आत्म प्रदेश—पुनः मुनि के शरीर में प्रवेश करके उत्तर देते हैं। यह क्रिया अत्यन्त शीघ्र होने से प्रश्नकर्ता को इसका पता भी नहीं चलता है। इस आत्मिक शक्ति का नाम आहारक लब्धि। आहारक लब्धि के द्वारा बना हुआ शरीर आहारक शरीर कहलाता है।

प्रश्न १४—तेजस् शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर—जिससे आहार का दीपन व पाचन हो तथा तेजो लब्धि मिले उसे तेजस् शरीर कहते हैं।

प्रश्न १५—कार्मण शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर—कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं। सब शरीरों का मूल कारण (जड़) यही है। तेजस् और कार्मण शरीर सब संसारी आत्माओं के सदा साथ रहते हैं।

प्रश्न १६—प्राण किसे कहते हैं?

उत्तर—पर्याप्ति की अपेक्षा रखने वाली जीवन शक्ति का नाम है प्राण। प्राण के वियोग का नाम है, मृत्यु।

प्राण दस हैं:—

	नाम	अर्थ	कारण
१.	श्रोत्रेन्द्रिय प्राण	सुनेन की शक्ति।	इन्द्रिय पर्याप्ति
२.	चत्तुइन्द्रिय प्राण	देखने की शक्ति।	इन्द्रिय पर्याप्ति
३.	घ्राण इन्द्रिय प्राण	सूंघने की शक्ति।	इन्द्रिय पर्याप्ति
४.	रसन इन्द्रिय प्राण	स्वाद लेने की शक्ति।	इन्द्रिय पर्याप्ति
५.	स्पर्शन इन्द्रिय प्राण	छूने की शक्ति।	इन्द्रिय पर्याप्ति
६.	मनोबल	समझने की शक्ति	मनः पर्याप्ति।
७.	बचन बल	बोलने की शक्ति	भाषा पर्याप्ति।
८.	काया बल	शरीर से काम करने की शक्ति	शरीरपर्याप्ति।
९.	श्वासोच्छ्वास प्राण	श्वास लेनेकी शक्ति,	श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति।
१०.	आयुष्य प्राण	जीवित रहने की शक्ति,	आहार पर्याप्ति।

प्रश्न १७—प्राण और पर्याप्ति में क्या भेद हैं ?

उत्तर—प्राण आत्मिक शक्ति है। पर्याप्ति आत्मा के द्वारा ग्रहण किये हुए पुद्गलों की शक्ति है। पुद्गलों की सहायता के बिना मन बचन और काया की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। जैसे बिना पेट्रोल के मोटर नहीं चल सकती।

छठीं कलिका

प्रश्न १—भाषा का क्या अर्थ है ?

उत्तर—मनोभावों को शब्दों तथा संकेतों के द्वारा प्रकट करने का नाम भाषा है और प्रकट करने में जिन पुद्गलों की सहायता ली जाती है उन पुद्गलों को भाषा वर्गणा के पुद्गल कहते हैं। ये पुद्गल परमाणु समूचे लोक में व्याप्त हैं। जब वक्ता बोलता है तो वे पुद्गल शब्द रूप में परिणित हो जाते हैं।

प्रश्न २—भाषा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—वक्ता का वचन चार प्रकार का हो सकता है इसलिए भाषा के चार भेद हुए:—

(१) सत्यभाषा—राग द्वेष के विना यथार्थ कहना सत्यभाषा है।

(२) असत्य भाषा—जिसमें यथार्थ कथन न हो, वह असत्य भाषा है।

(३) मिश्रभाषा—कुछ सत्य और कुछ असत्य कहना मिश्र भाषा है।

(४) व्यवहार भाषा—सत्य असत्य का भेद न करके लोक व्यवहार से कथन करना व्यवहार भाषा है।

प्रश्न ३—सत्य भाषा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दस भेद हैं :—

(१) जनपद सत्य—जिस देश में जो भाषा बोली जाती है, उस देश में जनपदसत्य है, जैसे मारवाड़ में बाबा कहते हैं—पिता के बड़े भाई को एवं गुजरात में बाबा कहते हैं छोटे बच्चे को।

(२) सम्मत सत्य—प्राचीन विद्वानों ने जिस शब्द का जो अर्थ मान लिया हो, उस अर्थ में वह शब्द सम्मत सत्य है, जैसे कमल और मेंढक दोनों पंक (कीचड़) से पैदा होते हैं, तो भी कमल को ही पंकज कहते हैं किन्तु मेंढक को नहीं।

(३) स्थापना सत्य—किसी भी वस्तु की स्थापना (कल्पना) करके उस नाम से पुकारना स्थापना सत्य है, जैसे. ताश के पत्तों में बादशाह की स्थापना करना।

(४) नाम सत्य —गुण विहीन होने पर भी किसी व्यक्ति या वस्तु का वैसा नाम रखना, नाम सत्य है जैसे कायर को बहादुरसिंह कहना।

(५) रूप सत्य—कोई विशेष रूप बनाने पर उसे भी उसी नाम से पुकारना रूप सत्य है जैसे–साधु का रूप बनाने पर ढोंगी को भी साधु कहना।

(६) प्रतीत सत्य—(अपेक्षा सत्य) एक वस्तु की अपेक्षा से दूसरी वस्तु को छोटी बड़ी आदि कहना प्रतीत सत्य है। जैसे एक ही अंगुली को किसी, अंगुली

से छोटी व किसी अंगुली से बड़ी बताना।

(७) **व्यवहार सत्य**—(लोक सत्य) व्यवहार में जैसा बोला जाये वैसा बोलना व्यवहार सत्य है, जैसे—पूछते हैं यह सड़क कहाँ जाती है, जाता तो सड़क पर चलने वाला आदमी ही है, परन्तु पूछा यों ही जाता है।

(८) **भाव सत्य**—जिस वस्तु में जो भाव उत्कृष्ट रूप में मिलता हो उसी को लक्ष्य करके कहना भाव सत्य है, जैसे तोते में कई रंग मिलते फिर भी उसे हरा कहना।

(९) **योग सत्य**—सम्बन्ध विशेष से किसी व्यक्ति को उसी नाम से पुकारना योग सत्य है, जैसे टेनिस खेलते हुए अध्यापक को भी अध्यापक कहना।

(१०) **उपमा सत्य**—किसी एक बात में समानता होने पर एक वस्तु की दूसरी वस्तु से तुलना करना उपमा सत्य है। जैसे चरण-कमल।

प्रश्न ४—असत्य भाषा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दश भेद हैं:—[१] क्रोध, [२] मान, [३] माया, [४] लोभ, [५] राग, [६] द्वेष, [७] हास्य, [८] भय, इनके वश (मिश्रित) होकर जो वचन बोला जाय वह असत्य भाषा है।

[९] **अख्यायिका**—कहानी में जो असम्भव और राग-द्वेष बढ़ाने वाली बातें कहना आख्यायिका मिश्रित असत्य भाषा है।

(१०) **उपघात मिश्रित**—प्राणियों की हिंसा हो वैसी बात बोलना उपघात मिश्र असत्य है।

प्रश्न ५—मिश्र भाषा के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दस भेद हैं।

(१) उत्पन्न मिश्रित—जितने वच्चों का जन्म हुआ है उससे न्यूनधिक बताना।

(२) विगत मिश्रित—इसी प्रकार मरण के विपय में न्यून व अधिक बताना।

(३) उत्पन्न-विगत-मिश्रित—जन्म, मृत्यु, दोनों के विषय में न्यूनाधिक बताना।

(४) जीव मिश्रित—जीव अजीव की विशाल राशि को देखकर कहना ओह ! यह कितना बड़ा जीवों का समूह है किन्तु इसमें वहुत से मरे हुये भी तो होंगे।

(५) अजीव मिश्रित—कूड़े कचरे के ढेर को देखकर यह कहना—यह सव अजीव हैं। किन्तु इसमें बहुत से जीव भी तो मिलेंगे।

(६) जीवाजीव मिश्रित—जीव अजीव की राशि में यथार्थरूप से यह बताना कि इसमें इतने जीव हैं और इतने अजीव।

(७) अनन्त मिश्रित—आलू आदि अनन्त काय का समूह देख कर यह कहना—यह सब तो अनन्त काय हैं। किन्तु इसमें प्रत्येक काय भी मिल सकती हैं।

(८) प्रत्येक मिश्रित—इसी प्रकार प्रत्येक काय के ढेर में अनन्त काय भी मिल जाय।

(९) अद्धा मिश्रित—दिन रात आदि काल के विपय में मिश्र

वचन बोलना। जैसे–दिन उगने वाला है। फिर भी सुप्त पुरुष कहता है—अभी तक तो दो पहर रात पड़ी है।

(१०) श्रद्धाद्धामिश्रित—दिन या रात के एक भाग को श्रद्धा कहते हैं। दिन उगा ही है तथापि मालिक नौकर से कहता है—अरे! दोपहर हो गया और अभी तक दीपक जल रहा है।

प्रश्न ६—व्यवहार भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर—जो न सत्य हो न असत्य हो, लोक व्यवहार जिससे चलता हो वह व्यवहार भाषा कहलाती है। इसके १२ भेद हैं—

(१) आमंत्रणी—सम्बोधन करना। जैसे–हे प्रभो।

(२) आज्ञापनी—आज्ञा देना–यह काम करो।

(३) याचनी—मांगना; यह हमें दो।

(४) पृच्छनी—संदेह होने पर पूछना।

(५) प्रज्ञापनी—प्रतिपादन करना।

(६) प्रत्याख्यानी—किसी भी बात की प्रतिज्ञा करना।

(७) इच्छानुलोमा—खुद को सम्मत ऐसी दूसरों की इच्छा का अनुमोदन करना।

(८) अनभि गृहिता—अपनी सम्मति प्रकट न करना।

(९) अभिगृहिता—सम्मति प्रकट करना।

(१०) संशयकारिणी—जिससे शंका पैदा हो।

(११) व्याकृता—स्पष्ट बात कहना।

(१२) अव्याकृता—अस्पष्ट या गूढ़ बात कहना।

इन सब भेदों में सत्य और व्यवहार भाषा ग्राह्य है, मिश्र व असत्य भाषा छोड़ने योग्य है।

सातवीं कलिका

प्रश्न—गुण स्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा की क्रमिक विशुद्धि—(निर्मलता) को गुण स्थान कहते हैं। ये मोक्ष महल पर चढ़ने के लिये १४ सीढ़ियाँ हैं। जिन पर आत्मा चढ़ती-चढ़ती अपने अन्तिम ध्येय तक पहुँच सकती है।

चउदह गुण स्थान ये हैं—(१) मिथ्या दृष्टि गुण स्थान, (२) सास्वादन सम्यग् दृष्टि गुण स्थान, (३) मिश्र गुण स्थान, (४) अविरत सम्यग् दृष्टि गुण स्थान, (५) देश विरति गुण स्थान, (६) प्रमत्त संयत गुण स्थान, (७) अप्रमत्त संयत गुण स्थान, (८) निवृत्ति बादर गुण स्थान, (९) अनिवृत्ति बादर गुण स्थान, (१०) सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान, (११) उपशान्त मोह गुण स्थान, (१२) क्षीण मोह गुण स्थान, (१३) सयोगी केवली गुण स्थान, (१४) अयोगी केवली गुण स्थान।

(१) मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—तत्व में विपरीत श्रद्धा रखने वाले प्राणी की आत्म-विशुद्धि। अर्थात् जो अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि गुणों को अच्छा मानता है, तथा उनका पालन भी करता है, यह उसका गुण है। इस गुण की अपेक्षा से ही उसकी किंचित् आत्म-विशुद्धि का नाम मिथ्या दृष्टि गुण स्थान है।

(२) सास्वादन सम्यग् दृष्टि गुण स्थान—जीव उपशम सम्यक्त्व से गिर कर जब मिथ्यात्व में आता है तो उसके मध्य की अवस्था को (जब कि सम्यक्त्व का कुछ स्वाद सा रहता है) सास्वादन सम्यग् दृष्टि गुण स्थान कहते हैं।

(३) मिश्र गुण स्थान—तत्व या तत्व के एक विषय में सन्देहशील अवस्था को मिश्र गुण स्थान कहते हैं। इस गुण स्थान मे न तो परलोकका आयुष्य बंधता है और न मृत्यु ही होती है।

(४) अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान—जो सम्यग् दृष्टि तो है किन्तु कुछ भी त्याग व्रत नहीं कर सकता, उसकी अवस्था को अविरत सम्यग् दृष्टि गुण स्थान कहते हैं। भावी तीर्थङ्कर (गृहस्थ दशा में) चक्रवर्ती, देवता, युगलिया, वासुदेव, बलदेव, (जो सम्यग् दृष्टि हो) उनमें यही गुण स्थान पाया जाता है।

(५) देश विरति सम्यग् दृष्टि गुण स्थान—जो सम्यग् दृष्टि यथा शक्ति त्याग (व्रत) आदि कर सकता हो उसकी अवस्था को देश विरति सम्यक् दृष्टि गुण स्थान कहते हैं। देश विरति अर्थात् श्रावक।

(६) प्रमत्त संयत्त गुण स्थान—प्रमाद युक्त सर्व त्यागी मुनि की आत्म-विशुद्धि को प्रमत्त संयत गुण स्थान कहते हैं।

(७) अप्रमत्त संयत गुण स्थान—प्रमत्त संयत जब स्वाध्याय आदि में तल्लीन हो जाता है तब प्रमाद रहित होने से उसकी अवस्था को अप्रमत्त संयत गुण स्थान कहते हैं। सव

प्रकार की विशेष लब्धियाँ (आत्म शक्तियाँ) और अवधि मनः पर्यव ज्ञान इसी दशा में प्राप्त होते हैं।

(८) निवृत्ति बादर गुण स्थान---आत्मा का स्थूल रूप से कषायों--क्रोध, मान, माया, लोभ से छूटकारा पाने की अवस्था को निवृत्ति बादर गुण स्थान कहते हैं।

इस गुण स्थान से आत्म-विकास के दो मार्ग हो जाते हैं। कई जीव तो मोह कर्म को दबाते हुए (उपशान्त करके) आगे बढ़ते हैं और ग्यारहवे गुण स्थान तक पहुँच कर रुक जाते हैं। कई जीव मोह का क्षय करते हुए बढ़ते हैं और दसवें गुण स्थान से सीधे बारहवे में जाकर फिर तेरहवे में केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं। पहला मार्ग उपशम श्रेणी का और दूसरा क्षपक श्रेणी का है।

(९) अनिवृत्ति बादर गुण स्थान---जब आत्मा बादर स्थूल काषायों से प्रायः दूर हो जाती है। थोड़े अंश में कषाय बाकी रहता है, उस अवस्था को निवृत्ति बादर गुण स्थान कहते हैं। इस गुण स्थान के अन्त तक वेद विकार नष्ट हो जाता है।

(१०) सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान---जब आत्मा के साथ सूक्ष्म लोभ का अंश ही बाकी रह जाता है, आत्मा की उस अवस्था को सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान कहते हैं।

(११) उपशान्त मोह गुण स्थान---जब आत्मा मोह कर्म को बिल्कुल उपशान्त (दबा देती है) कर देती है, उस अवस्था को उपशान्त मोह गुण स्थान कहते हैं।

(१२) क्षीण मोह गुण स्थान---मोह कर्म का समूल नाश

होने पर जो आत्म-शुद्धि होती है उसे क्षीण मोह गुण स्थान कहते हैं।

(१३) **सयोगी केवली गुण स्थान**——ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार (घाति चतुष्क) कर्मों का नाश होने पर केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति होती है, उस अवस्था को सयोगी केवली गुण स्थान कहते हैं।

(१४) **अयोगी केवली गुण स्थान**——जब केवल ज्ञानी अपने मन, वचन व काया के योगों को सम्पूर्ण रोक करके अयोगी हो जाते हैं उस अवस्था को अयोगी केवली गुण स्थान कहते हैं। इस स्थिति में अ, इ, उ, ऋ लृ इन पांच ह्रस्व अक्षरों के बोलने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में आत्मा शेप कर्मों का नाश करके मोक्ष में चली जाती है और सिद्ध भगवान् कहलाती है।

प्रश्न २—गुण स्थानों का विशेप विश्लेषण क्या है ?

उत्तर—चौदह गुण स्थानों मे से एक गुण स्थान मे एक जीव जघन्य (कम से कम) और उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा) जितने समय रहता है उसे स्थिति कहते हैं। जघन्य सब की अन्तर्मुहुर्त से ज्यादा नहीं है। किस किस गुण स्थान में किन २ कर्मों का बंध, उनकी सत्ता (विद्यमानता) उदय और निर्जरा है। यह सब निम्न कोष्टक में दिखाया गया है।

गुण स्थान-चक्र

गुण स्थान	कर्म बंध	सत्ता	उदय	निर्जरा	उ. स्थिति	आश्रव के ५ भेदों के आधार पर +
१	७-८	८	८	८	त्रिविध	५
२	७-८	८	८	८	६ आवलिका .	४
३	७	८	८	८	अन्तर्मुहूर्त .. .	५
४	७-८	८	८	८	६६ सागर से अधिक	४
५	७-८	८	८	८	क्रोड़ पूर्व से कम	४ ×
६	७-८	८	८	८	,,	३
७	७-८	८	८	८	अन्तर्मुहूर्त....	२
८	७	८	८	८	,, ...	२
९	७	८	८	८	,, ...	२
१०	६	८	८	८	,, ...	२
११	१	८	७	७	,, ...	२
१२	१	७	४	७	,, ...	१
१३	१	४	४	४	क्रोड़ पूर्व से कम	१
१४	अबंध	४	४	४	पंच ह्रस्व अक्षर मान	—

+ नोट—४१ वें पृष्ठ पर देखिए।

+ नोट १. जहाँ ७ कर्म है वहाँ आयुष्य नही है।

२. जहाँ ६ कर्म हैं वहाँ मोह भी नही है।

३. जहाँ ४ कर्म हैं वहाँ ज्ञान. दर्शन, मोह, अन्तराय ये ४ नही है।

४. जहाँ एक कर्म है वहाँ सिर्फ सातावेदनीय का वंध है।

५ त्रिविध का अर्थ है—अनादि अनन्त, अभव्य की अपेक्षा। २—अनादि सांत-भव्य की अपेक्षा। ३—सादि सात–सम्यक्त्व मे गिरे हुये की अपेक्षा।

६. आवलिका—एक मुहुर्त मे (४८ मिनट) १ करोड़, ६७ लाख, ७७ हजार, दो सौ सोलह आवलिका होती हैं।

× पाचवें गुण स्थान मे सम्यक्त्व के साथ देशव्रत भी होता है, किन्तु अव्रत-आश्रव पूर्णरूप से नही रुकता है, अतः इसमे अव्रत आश्रव माना जाता है।

आठवीं कलिका

प्रश्न १—आत्मा की अवस्थायें क्यों बदलती हैं ?

उत्तर—भावों के कारण।

प्रश्न २—भाव क्या हैं ?

उत्तर—कर्मों के संयोग या वियोग से होने वाली आत्मा की अवस्था को भाव कहते हैं। भाव पाँच हैं—(१) औदयिक, (२) औपशमिक, (३) क्षायिक, (४) क्षयोपशमिक, (५) पारिणामिक।

प्रश्न ३—औदयिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म-फल भोगने की अवस्था को उदय कहते हैं, उदय से जीव की जो अवस्था होती है, उसे औदयिक भाव कहते हैं। उदय आठों ही कर्मों का हो सकता है।

प्रश्न ४—औपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—अन्तर्मुहुर्त के लिये मोह कर्म के उदय को सर्वथा दबाने का नाम है उपशम। उपशम से होने वाली जीव की अवस्था को औपशमिक भाव कहते हैं। उपशम सिर्फ मोह कर्म का होता है।

प्रश्न ५—क्षायिक भाव किसे कहते हैं।

उत्तर—कर्मों का समूल नाश हो जाना क्षय है। क्षय से

होने वाली अवस्था को क्षायिक कहते हैं। क्षय आठों ही कर्मों का होता है।

प्रश्न ६—क्षयोपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—घाति कर्मों के (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय) विपाक उदय को रोकने का नाम क्षयोपशम है। क्षयोपशम से होने वाली जीव की अवस्था को क्षयोपशमिक× भाव कहते हैं।

प्रश्न ७—पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने अपने स्वभाव में परिणित होने का नाम है 'परिणाम'। परिणाम से होने वाली जीव की अवस्था को पारिणामिक भाव कहते हैं।

संसारी आत्माओं में कम से कम तीन भाव तो होते ही हैं। क्योंकि—

औदायिक अवस्थायें ये हैं—चार गति, छव काय, छव लेश्या, चार कषाय, तीन वेद, मिथ्यात्व, अविरति, अमनस्कता, अज्ञानित्व, आहारता, संसारता,—असिद्धता, अकेवलित्व, छद्मस्थता, संयोगिता—ये औदायिक अवस्थाएं हैं।

क्षायोपशिक अवस्थायें ये हैं—घाति कर्मों के क्षयोपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था को क्षयोपशिम भाव कहते हैं।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशग से होने वाली अव-

× नोट—कर्मोदय के दो प्रकार हैं—विपाकोदय और प्रदेशोदय। जो कर्म उदय मे आकर फल देते हैं, वह विपाकोदय हैं, और जो कर्म उदय में आकर भी प्रकट रूप मे फल नहीं देते, वह प्रदेशोदय हैं।

स्थायें—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंग अज्ञान और भणन गुणन (अध्ययन)।

(२) दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाली अवस्थायें–पांच इन्द्रिय, चक्षु-दर्शन अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।

(३) मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाली अवस्थायें–सामायिक चारित्र, छेदोपस्थाप्य–चारित्र, सूक्ष्म-सम्पराय-चारित्र देश-विरति सम्यगदृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग् मिथ्या दृष्टि।

(४) अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से होने वाली अवस्थायें, दान–लब्धि, लाभ-लब्धि, भोग-लब्धि, उपभोग-लब्धि, वीर्य-लब्धि, बलवीर्य पण्डित वीर्य और बालपण्डित-वीर्य।

और परिणामिक भाव ये हैं—परिणमन से होने वाली अवस्था को या परिणमन को ही पारिणामिक भाव कहते हैं—

वे दो प्रकार के होते हैं—

(१) सादि पारिणामिक–घटपट आदि।

(२) अनादि पारिणामिक–जीव, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि।
जीवाश्रित पारिणामिक के दश भेद है—

१. गति, २. इन्द्रिय, ३. कपाय, ४. लेश्या, ५. योग, ६. उपयोग, ७. ज्ञान, ८. दर्शन, ९, चारित्र, १० वेद।

परिणमन अजीव के भी होता है इसलिये पारिणामिक भाव अजीव के भी हैं।

अजीवाश्रित पारिणामिक के दश भेद हैं—

१. बन्धन, २. गति, ३. संस्थान ४. भेद, ५. स्पर्श, ६. रस' ७. गंध, ८. वर्ण, ९. अगुरुलघु, १०. शब्द।

अतः तीन भावों वाले मे गति, काय, लेश्या, वेद आदि औदायिक भाव की ज्ञान दर्शन, इन्द्रिय, चारित्र लब्धि आदि क्षयोपशमिक भाव की जीवाजीव परिणति रूप परिणामिक भाव की अवस्था मे तो है ही।

सिद्ध आत्माओं में भी दो भाव तो हैं ही क्योंकि क्षायिक अवस्थायें ये है—कर्मों के क्षय मे होने वाली आत्मा की अवस्था को क्षायिक भाव कहते हैं।

इसके आठ भेद है—१. केवलज्ञान (अनन्तज्ञान) २. केवलदर्शन (अनन्त दर्शन) ३. आत्मिक सुख, ४. क्षायिक सम्यकत्व (क्षायिक चारित्र), ५. अटल अवगाहन, ६. अमूर्तिकपन, ७. अगुरुलघुपन, ८. क्षायिक लब्धि (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) उनमें केवल ज्ञान दर्शन, अटल, अवगाहन आदि औपशमिक भाव की अवस्थाएं है—जो किसी विशेष आत्मा में होती है।

प्रश्न ८—उपशम भाव व क्षयोपशमिक भाव में क्या अन्तर है?

उत्तर—उपशम में विपाकोदय और प्रदेशोदय दोनों ही नहीं होते। क्षयोपशम मे सिर्फ विपाकोदय नहीं होता जैसे—साफ पानी में जहाँ गर्दा नीचे बैठा हुआ है वह क्षयोपशम और जहाँ गर्दा कुछ समय के लिये है ही नहीं[1] वह उपशम।

प्रश्न ९—आत्मा किसे कहते हैं?

उत्तर—चेतना लक्षण वाले असंख्यात प्रदेशी द्रव्य को आत्मा कहते हैं। जीव और आत्मा यह दोनों एकार्थक हैं। उसके आठ भेद हैं।

---

(१) नोट—यह उदय अवस्था को लेकर के ही है सत्ता मे नाश होना तो क्षायिक भाव है।

(१) द्रव्यात्मा--धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय की तरह आत्मा के भी असंख्य प्रदेश होते हैं। उन असंख्य प्रदेशों का नाम द्रव्यात्मा है।

(२) कषायात्मा--क्रोधादि कषाय युक्त आत्मा काषायात्मा है। यह आत्मा की विकृत अवस्था है।

(३) योगात्मा--मन, वचन, एवं काय योग में प्रवृत्त आत्मा योगात्मा है। यह आत्मा को चञ्चल अवस्था है।

(४) उपयोगात्मा--चेतना शक्ति के व्यापार युक्त आत्मा उपयोगात्मा है। यह आत्मा का लक्षण है।

(५) ज्ञानात्मा—ज्ञान (विशेष) में वर्तमान आत्मा, ज्ञानात्मा है। यह सम्यग् दृष्टि के ही होती है।

(६) दर्शनात्मा—दर्शन (तत्व सम्बन्धी मान्यता) सहित आत्मा दर्शनात्मा है। यह सब जीवों में प्राप्त है।

(७) चारित्रात्मा— सामायिकादि चारित्र युक्त आत्मा का नाम चरित्रात्मा है। यह आत्मा को स्थिर अवस्था है और मात्र साधुओं में ही प्राप्त है।

(८) वीर्यात्मा— वीर्य अर्थात् शक्ति, आत्मा अनन्त शक्तिमान् है अतः इसको वीर्यात्मा कहते हैं। आठ आत्माओं में एक द्रव्यात्मा है और शेष सात भावात्माएं हैं अर्थात् उसकी अवस्थायें हैं।

प्रश्न १०—किस किस जीव में कितनी आत्मायें होती हैं?

उत्तर—द्रव्य आत्मा, वीर्य आत्मा, दर्शन आत्मा, उपयोग

आत्मा ये चार सब संसारी जीवों के होती हैं। कषायात्मा सकषाई जीवों के, योगात्मा संयोगी जीवों के, चारित्रात्मा सर्व विरति संतों के, भव्य जीवों में आठो ही आत्मा, अभव्य में ज्ञान और चारित्र के सिवाय शेष छवों ही आत्मा होती है। सिद्धों में चार आत्मा हैं—द्रव्य, उपयोग, ज्ञान और दर्शन।

प्रश्न ११—वेद किसे कहते हैं?

उत्तर—स्त्री, पुरुष और नपुंसकों की जो पारस्परिक अभिलाषा अर्थात विकार होता है उसको वेद कहते हैं। पुरुष के प्रति स्त्री का विकार स्त्री वेद, स्त्री के प्रति पुरुष का विकार पुरुष वेद और इन दोनों के प्रति नपुंसकों का विकार नपुंसक वेद कहलाता है। इन तीनों का विकार क्रमशः कंडे, तृण एवं ईंट की आग के समान होता है। यह विकार नवम गुण स्थान तक रहता है।

ये तीनों वेद द्रव्य और भाव रूप से दो दो प्रकार के हैं। द्रव्य-वेद का मतलब ऊपर के चिन्ह से है, और भाव वेद का मतलब अभिलाषा विशेष से है। द्रव्य वेद पौद्गलिक आकृति रूप है, जो नाम कर्म के उदय का फल है। इसे लिंग भी कहते हैं। भाव वेद एक प्रकार का मनोविकार है जो मोहनीय कर्म के उदय का फल है।

नवमी कलिका

प्रश्न १—मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—आध्यात्मिक तत्वों में विपरीत श्रद्धा (मान्यता) को मिथ्यात्व कहते हैं। यद्यपि लौकिक ज्ञान में मिथ्यात्वी, सम्यक्त्वी से बढ़ा-चढ़ा हो सकता है किन्तु आध्यात्मिक ज्ञान पारमार्थिक ज्ञान शुद्ध नहीं होने से ही उसकी श्रद्धा मिथ्यात्व कहलाती है। मिथ्यात्व ५ प्रकार का होता है-(१) आभिग्रहिक (२) अनाभिग्रहिक (३) आभिनिवेशिक (४) सांशयिक (५) अनाभोगिक।

(१) **आभिग्रहिक**—तत्व की परीक्षा किये बिना पक्षपात पूर्ण एक सिद्धान्त का आग्रह करना और अन्य पक्ष का खण्डन करना आभिग्रहिक मिथ्यात्व है।

(२) **अनाभिग्रहिक**—सत्य असत्य का विवेक न होने से सब देवों को, सब गुरुओं को, सब धर्मों को समान मानना। जैसे कहते हैं—हमें तत्व से क्या करना है—भगवान् के वेश को पूजते हैं-हमारे से तो सब ही अच्छे हैं। ऐसा कहनेवाले इन्हीं के वंशज हैं।

(३) **अभिनिवेशिक**—सत्य तत्व को जानता हुआ भी क्रोध अभिमान (जिद्द) पक्षपात आदि आवेश (अभिनिवेश) में

आकर झूठी बात को ही सच्ची कहकर मण्डन करना अभिनिवे-शिक मिथ्यात्व कहलाता है।

(४) **सांशयिक** वीतराग प्रभु के कहे हुये सिद्धान्त में सन्देहशील बने रहना, सांशयिक मिथ्यात्व है।

(५) **अनाभोगिक**—विचार शून्यता के कारण अर्थात् जो अज्ञान के वश लगता हो, जिसमें सत्य असत्य आदि कुछ भी मान्यता नहीं होती है। वह अनाभोगिक मिथ्यात्व है जो विशेपतः एकेन्द्रिय आदि मे होता है।

प्रश्न २—मिथ्यात्वी की पहिचान कैसे होती है ?

उत्तर—निश्चित रूप से तो बिना सर्वज्ञ (पूर्णज्ञानी) के कोई किसी को सम्यक्त्वी या मिथ्यात्वी नहीं कह सकता। किन्तु व्यव-हारिक रूप में जो इन १० बातों में मिथ्या श्रद्धा रखता है उसे मिथ्यात्वी कहते है।

(१) धर्म को अधर्म समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(२) अधर्म को धर्म समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(३) साधु को असाधु समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(४) असाधु को साधु समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(५) मार्ग को कुमार्ग समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(६) कुमार्ग को मार्ग समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(७) जीव को अजीव समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(८) अजीव को जीव समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(९) मुक्त को अमुक्त समझनेवाला मिथ्यात्वी।

(१०) अमुक्त को मुक्त समझनेवाला मिथ्यात्वी।

इन सब बोलों में से किसी एक को भी मिथ्या समझनेवाला मिथ्यात्वी है। यदि किसी एक में भी संदेहशील है तो वह मिश्र गुण स्थानवर्ती है।

प्रश्न ३—मिथ्यात्व और मिथ्या दृष्टि में क्या अन्तर है?

उत्तर—मिथ्यात्व मोह कर्म का उदय भाव होने से "आवरण" रूप है। मिथ्यादृष्टि क्षयोपशम मात्र होने से आत्मा-विशुद्ध रूप है।

दसवीं कलिका

प्रश्न १—सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—यथार्थ तत्व श्रद्धा को सम्यक्त्व कहते हैं। जैसे—

या देवे देवता बुद्धिः गुरौ च गुरु धीमता,
धर्मे च धर्म धीः शुध्धा, सम्यक्त्व मिदमुच्यते ॥१॥

(योग शास्त्र)

अर्थात् वीतराग को देव मानना, सर्व त्यागी पंच महाव्रत धारी मुनि को गुरु मानना, वीतराग कथित धर्म पर शुद्ध श्रद्धा रखना सम्यक्त्व है।

प्रश्न २—सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे होती है ?

उत्तर—सम्यक्त्व प्राप्ति के क्रम में तीन करण (आत्मा का परिणाम) माने गये हैं। "यथा-प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण, "अनिवृत्ति करण"।

(१) यथा प्रवृत्ति करण—अनादि काल से संसार में चक्कर काटता हुआ प्राणी जब कुछ शुभ परिणामों के कारण राग, द्वेष रूप ग्रंथि भेदने (गांठ तोड़ने) की जो तैयारी के निकट जाता है उसे यथा प्रवृत्ति करण कहते हैं। यह तैयारी भव्य, अभव्य दोनों के ही कई बार हो सकती है।

(२) अपूर्व करण—पहले कभी नहीं हुये ऐसे अपूर्व परिणामों से ग्रंथि भेद की चेष्टा करना अपर्व करण है।

(३) अनिवृत्ति करण— अपूर्व करण से ग्रंथि भेद होने पर राग द्वेष की तीव्रता मिट जाती है जिससे आत्मा जागरूक बनकर सम्यक्त्व प्राप्ति करती है। यह अनिवृत्ति करण है।

इन तीनों को इस उदाहरण से समझिये—कोई सूरदास बाबा प्रवेश करने के लिए किसी बन्द दरवाजे के पास आता है और असावधानी के कारण फिर भटक जाता है (१) आखिर चेष्टा करके उस दरवाजे को खोल लेता है (२) और खुलने के बाद उसमें आसानी से प्रवेश कर सकता है (३) यही क्रम तीनों करणों का है।

प्रश्न ३—सम्यक्त्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर—मुख्य रूप से सम्यक्त्व के ३ भेद (प्रकार) हैं—

[१] औपशमिक सम्यक्त्व— अनन्तानुबन्ध, क्रोध, मान, माया लोभ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, इन सात प्रकृतियों के उपशम होने से जो सम्यक्त्व होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। यह चौथे से ग्यारहवें गुण स्थान तक होता है।

[२] क्षयोपशमिक सम्यक्त्व—उक्त सातों प्रकृतियों के क्षयोपशम से होने वाला सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। यह चौथे से सातवें गुण स्थान तक होता है।

[३] क्षायिक सम्यक्त्व— ऊपर की सातों प्रकृतियों के समूल नाश (क्षय) से होने वाला सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता है। यह आने के बाद जाता नहीं है। चौथे से चौदह गुण स्थान तक एवं सिद्धों में भी यही सम्यक्त्व पाया जाता है।

तीसरा पूर्ण शुद्ध है. पहला उससे कुछ कम है और दूसरा दोनों से कम शुद्ध है।

गौण रूप से सास्वादन सम्यक्त्व (सम्यक्त्व से गिरती हुई अवस्था) और वेदक सम्यक्त्व (क्षायोपशमिक से क्षायिक में जाते हुये क्षायोपशमिक का अन्तिम क्षण) ये दो भेद और करने से ५ भेद भी हो सकते हैं।

प्रश्न ४—सम्यक्त्व की क्या पहचान है ?

उत्तर—सम्यक्त्वी की पहचान कराने वाले ५ लक्षण हैं—(१) **शम**—कदाग्रह (कषाय) आदि की शान्ति (२) **संवेग**—मुक्ति के प्रति अभिलाषा (३) **निर्वेद**—विषय भोग के प्रति विरक्ति-उदासीनता (४) **अनुकम्पा**—प्राणिमात्र के प्रति दया भाव (५) **आस्तिक्य**—आत्मा पुनर्जन्म आदि युक्ति सिद्ध विषयों पर विश्वास।

प्रश्न ५—क्या सम्यक्त्व में मलिनता भी आ सकती है ?

उत्तर—हाँ ५ कारणों से, जिनको दूषण कहते हैं :—

(१) **शङ्का**—तत्वों में सन्देह करना।

(२)**कांक्षा**—राग द्वेष युक्त पुरुषों द्वारा प्रवर्तित मतों की वांछा करना।

(३) **विचिकित्सा**—धर्म के फल में सन्देह करना।

(४) **पर पाखण्ड प्रशंसा**—मिथ्यादृष्टि, व्रत भ्रष्ट पुरुषों की प्रशंसा करना।

(५) पर पाखण्ड परिचय—मिथ्यादृष्टि और व्रत भ्रष्ट पुरुषों का परिचय करना।

प्रश्न ६—क्या वेदों को नहीं मानने वाला नास्तिक है ?

उत्तर—ऐसा कहना सिर्फ साम्प्रदायिक मोह है-फिर तो एक दूसरे की दृष्टि में सभी नास्तिक हैं। हिन्दू कहता है—वेद को न मानने वाला नास्तिक है। मुसलमान कहता है—कुरान को न मानने वाला काफिर (नास्तिक) है। ईसाई कहता है—बाईबिल को न मानने वाला एथिष्ट (नास्तिक) है। इस तरह 'अपनी अपनी तान में सभी तान मस्तान' वाली बात होगी जिसके जमाने लद चुके हैं।

प्रश्न ७—आस्तिक व नास्तिक की क्या परिभाषा है ?

उत्तर—पाणिनी और आचार्य हेमचन्द्र जैसे शब्द शास्त्री कहते हैं कि जो आत्मा, पाप पुण्य पूर्व जन्म आदि विषयों पर विश्वास करता है वह आस्तिक; और जो विश्वास नहीं करता है वह नास्तिक है।

प्रश्न ८—सम्यक्त्व से क्या लाभ होता है ?

उत्तर—यों तो सम्यक्त्व की प्राप्ति होने से आत्मा को अनेकों लाभ होते हैं। परन्तु मुख्यतया ४ लाभ हैं ही—

(१) सम्यक्त्वी की दृष्टि—याने सत्य को समझने की विचार धारा शुद्ध रहती है। वह आग्रही नहीं किन्तु जिज्ञासु होता है।

(२) सांसारिक सुख दुःख आने पर न सुख में मतवाला बनता है और न दुःख में घबराता है। दोनों को नाशवान् मान कर सदा प्रसन्न रहता है।

(३) जिस आत्मा ने सम्यक्त्व रूपी अमृत की एक घूंट भी

ली वह एक दिन संसार के दुःखों से पिंड छुड़ा कर मुक्त हो ही जायेगा।

(४) सम्यक् दृष्टि—वैमानिक देवताओं के सिवाय दूसरी गतियों का आयुष्य नहीं बाँधता। जैसे—

"भवेद् वैमानिको वश्यं जन्तुः सम्यक्त्व वासितः।
यदि नोद्वान्त सम्यक्त्वं वध्धायुर्वापि नो पुरा॥"
(योगशास्त्र)

प्रश्न ९—दृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर—दृष्टि का मतलब है तत्व सम्बन्धी मान्यता यह तीन प्रकार की है।

(१) सम्यक्दृष्टि—सच्ची मान्यता।

(२) मिथ्यादृष्टि—झूठी मान्यता।

(३) सम्यक् मिथ्यादृष्टि—सन्देहयुक्त मान्यता।

प्रश्न १०—भव्य अभव्य की क्या पहिचान?

उत्तर—जो मोक्ष जाने योग्य है वह भव्य है। जिसकी आत्मा में यह प्रश्न पैदा हो कि मैं मोक्ष गामी हूँ या नहीं, तो समझो कि वह भव्य है। भव्य जीव भी सब मोक्ष जाये ऐसा तो नहीं है। परन्तु तथ्य यह है कि जो जायेंगे वे भव्यों में से जायेंगे।

ग्यारहवीं कलिका

प्रश्न १—आत्मा का बन्ध किस चीज का है ?

उत्तर—कर्म का।

प्रश्न २—कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा की अच्छी या बुरी प्रवृत्ति द्वारा आकृष्ट एवं कर्म रूप में परिणित होने योग्य पुद्गलों का नाम कर्म है। और ये जड़ हैं।

प्रश्न ३—यदि कर्म जड़ है तो फिर चेतन को सुख दुःख कैसे देते हैं ?

उत्तर—जड़ होती हुई शराब मनुष्य को पागल बना देती है। दूध घी आदि चीजें पुष्ट बना देती हैं, और जहर मार डालता है। इसी तरह जड़ होते हुये कर्मों के अणु भी चेतन के साथ मिल कर उसको सुखी या दुखी बनाने में समर्थ होते हैं।

प्रश्न ४—कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—

(१) द्रव्य—पुद्गल समूह को द्रव्य कर्म कहते हैं। जो ज्ञानावरण आदि ८ प्रकार के हैं।

(२) भाव—राग द्वेष आदि आत्मा के परिणामो को भाव कर्म कहते हैं, जो कि कर्म बंधने का मूल कारण है।

प्रश्न ५—आठ कर्म कौन २ से हैं और उनके कार्य क्या हैं ?

उत्तर—(१) ज्ञानावरणीय कर्म–ज्ञान को रोकता है, इसका जितना आवरण हटता है आत्मा में उतनी ही अधिक ज्ञान की जागृति होती है।

(२) दर्शनावरणीय कर्म—आत्मा के सामान्य ज्ञान। (दर्शन) में बाधा डालता है तथा निद्रा आदि का कारण है।

(३) वेदनीय कर्म—सांसारिक सुख दुःख का कारण है।

(४) मोहनीय कर्म—आत्मा को मोह में फंसा कर काम, क्रोध मान, माया, लोभ, शोक, घृणा, भय आदि पाप कर्म में प्रवृत्त करता है।

(५) आयुष्य कर्म—जीवन को टिके रखने में मुख्य सहायक होता है। जब तक जिस गति का आयुष्य कर्म है तब तक उसी गति में रहना पड़ता है।

(६) नाम कर्म—ऊंच नीच गति, सुन्दरता, असुन्दरता, यश, अपयश, तेज, प्रभाव, दीनता आदि सब इसी से मिलते हैं।

(७) गोत्र कर्म—जाति, कुल, बल, रूप, तप, ज्ञान, लाभ, धन आदि मिलने का कारण है।

(८) अन्तराय कर्म—दान, लाभ आदि शुभ कार्यों में विघ्न होने का कारण है।

प्रश्न ६—घाति अघाति कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन कर्मों के कारण आत्मा के मुख्य गुणों की घात होती है, उन्हें घाति कर्म कहते हैं। जैसे—(१,२,४,८) ये घाति कर्म हैं; इनके नाश होने पर ही केवल ज्ञान प्राप्त होता है।

घाति कर्म के नष्ट हो जाने पर अघाति कर्म (३,५,६,७) उसी जन्म में नष्ट हो जाते हैं। इनके नाश होने से ही मुक्ति होती है।

प्रश्न ७—कर्म बन्ध का कारण क्या है ?

उत्तर—कर्म बंधने का मूल कारण प्रवृत्ति है। जिस जिस विषय की अच्छी या बुरी प्रवृत्ति होती है, उस २ विषय से कर्म बंधते हैं। जैसे (१-२) ज्ञान दर्शन की अवहेलना करना, ज्ञान-दर्शन में अन्तराय डालना आदि आदि कारण—ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के हैं।

(३) प्राणियों की हिंसा करना, उनको कष्ट पहुँचाना आदि असात वेदनीय के कारण हैं। इनके न करने से सात वेदनीय बंधता है।

(४) अधिक क्रोध, लोभ, काम आदि में आसक्त होना मोह-नीय का कारण है।

(५) चार गतियों के अलग अलग कारण हैं—जैसेः-

(१) नरकायु—(क) महाआरम्भ, (ख) महापरिग्रह, (ग) पंचेन्द्रिय बध, (घ) माँसाहार।

(२) तिर्यञ्चायु—(क) माया, (ख) गूढ़ माया (एक कपट ढकने के लिये दूसरा छल करना), (ग) असत्य वचन, (घ) कूट तोल—कूट माप।

(३) मनुष्यायु— (क) सरल प्रकृति होना।
(ख) प्रकृति विनीत होना।
(ग) दया के परिणाम रखना।
(घ) ईर्ष्या न करना।

(४) देवायु—(क) सराग संयम–रागयुक्त संयम।

(ख) संयमासंयम–श्रावकपन पालना।

(ग) वाल तपस्या–मिथ्यात्वी की तपस्या।

(घ) अकाम निर्जरा–मोक्ष की इच्छा विना की तपस्या।

(५) नामकर्म वन्ध के कारण—

(क) काय ऋजुता—दूसरों को ठगने वाली शारीरिक चेष्टा न करना।

(ख) भाव ऋजुता—दूसरों को ठगने वाली मानसिक चेष्टा न करना।

(ग) भाषा ऋजुता—दूसरों को ठगने वाली वाचिक चेष्टा न करना।

(घ) अविसंवादनयोग—कथनी और करनी में एक रूपता रखना।

ये शुभ नाम कर्म वन्ध के कारण हैं और इनके विपरीत करना अशुभ-नाम-कर्म वन्ध के कारण हैं।

(६) गोत्र कर्म वन्ध के कारण—जाति, कुल, वल, रूप तपस्या, श्रुत (ज्ञान), लाभ, ऐश्वर्य इनका मद न करना उच्च गोत्र वन्ध के कारण है, और मद करना नीच–गोत्र–वन्ध के कारण है।

(७) अन्तराय कर्मवन्ध के कारण—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (उत्साह या सामर्थ्य) में वाधा डालना।

प्रश्न ८—वन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों का दूध पानी के समान एकाकार हो जाने को बन्ध कहते हैं। ये चार प्रकार के हैं—

(१) प्रकृति बन्ध—कर्मों का स्वभाव निश्चित होना। जैसे-ज्ञान को ढकने वाला।

(२) स्थिति बन्ध—आत्मा के साथ बंधे रहने तक का समय निश्चित होना।

(३) अनुभाग बन्ध—कर्मों का रस याने शक्ति का बनना।

(४) प्रदेश बन्ध—आत्मा और कर्म का घुल मिल जाना।

कर्म का संयोग होने के साथ इन चार बन्धों का निर्माण हो जाता है। इसको उदाहरण द्वारा यों समझना चाहिये—

एक औषधि निर्माता कई वस्तुओं को मिलाकर दवा तैयार करता है। वह किस रोग पर लगेगी, यह उसका स्वभाव निश्चित होता है, वह कितने समय तक काम में आ सकेगी यह उसकी स्थिति निश्चित होती है। उसका रसशक्ति (पावर) कितने डिग्री है यह अनुभाग बनता है और फिर अनेक दवाए घुलमिल कर एकाकार बनती है यह प्रदेश बन्ध है। इस तरह चारों बातें दवा के तैयार होते समयही निश्चित हो जाती है। यही क्रम, बन्ध का है।

प्रश्न ६—पुण्य पाप किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म पुद्गल शुभ प्रवृत्ति के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, और जो शुभ फल देते हैं वे पुण्य कर्म और जो अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं एवं अशुभ फल देते हैं, वह पाप कर्म है—

प्रश्न १०—पुण्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पुण्य बंधने के ९ भेद हैं इसलिये ये ९ पुण्य के नाम से पुकारे जाते हैं—

(१) अन्न पुण्य, (२) पान पुण्य, (३) लयन (स्थान) पुण्य, (४) शयन (शय्या) पुण्य, (५) वस्त्र पुण्य, (६) मन पुण्य, (७) वचन पुण्य, (८) काया पुण्य, (९) नमस्कार पुण्य ।

पहले पाँच, सुपात्र को, शुद्ध अन्न, पानी, स्थान, शयन, वस्त्र देने से होते हैं।

६, ७, ८ ये तीनों मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति करने से होते हैं।

९ वाँ भगवान् एवं गुरु को श्रद्धा से नमस्कार करने से होता है।

प्रश्न ११—पाप के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अशुभ कर्म का नाम पाप है। पाप १८ हैं, यानी पाप उपार्जन करने के १८ कारण हैं:—

(१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) अब्रह्मचर्य, (५) परिग्रह, (६) क्रोध, (७) मान, (८) माया, (९) लोभ, (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) कलह, (१३) अभ्याख्यान, (झूठा इलजाम लगाना) (१४) पैशुन्य (चुगली), (१५) पर-परिवाद (पर-निन्दा), (१६) रति-अरति (पाप में रुचि और धर्म में अरुचि) (१७) माया मृषावाद (कपट सहित झूठ बोलना) (१८) मिथ्या दर्शन शल्य (उल्टी समझ)।

प्रश्न १२—पुण्य, पाप और बन्ध में क्या अन्तर है ?

उत्तर—आत्मा के साथ बंधे हुये कर्म जब तक शुभ, अशुभ

फल नहीं दिखा कर स्टोक में पड़े रहते हैं तब तक बन्ध या (द्रव्य, पुण्य, पाप) कहे जाते हैं और फल दिखाने पर पुण्य पाप।

प्रश्न १३—क्या कर्मों को घटाया बढ़ाया जा सकता है?

उत्तर—कर्म दो तरह के होते हैं—(१) दलिक और (२) निकाचित (निश्चित)।

दलिक कर्मों में कमी-बेशी परिवर्तन जल्दी-देरी आदि बातें हो सकती हैं। जैसे—एक लम्बी रस्सी को लम्बी करके धीरे-धीरे भी जला सकते हैं और इकट्ठी करके एक साथ भी। परन्तु निकाचित कर्मों को तो बिना किसी परिवर्तन के उसी रूप में भोगना पड़ता है।

प्रश्न १४—क्या होना है जैसा ही होगा?

उत्तर—नहीं! यह मान कर हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठना चाहिये। किसी भी काम में ये पांच कारण होते हैं—काल, स्वभाव, कर्म, पुरुषार्थ और नियति। जैसे—कुसुम डाक्टरी पास करना चाहता है, उसे कम से कम ५—७ वर्ष लगाने पड़ेंगे—काल। शिक्षण के लिये मानसिक स्थिरता, रुचि आदि आवश्यक है—स्वभाव। चेष्टा करनी होगी, पाठ याद करना होगा, यह पुरुषार्थ है। कर्मों के क्षयोपशम से ही विकास हो सकता है—कर्म। इतना होने पर भी पास होना या न होना अपने हाथ की बात नहीं है—नियति। जैन दर्शन कार्य सिद्धि में इन पांच बातों को मानता हुआ कर्म और उद्योग को समान महत्व देता है।

प्रश्न १५—क्या कर्म फल भुगताने वाली कोई दूसरी शक्ति है?

उत्तर—नहीं है। जो कर्म करता है वही भोगता है—कर्म

बारहवीं कलिका

प्रश्न १—कर्म बन्ध क्यों होता है ?

उत्तर—आत्मा के शुभाशुभ परिणामों (आश्रव) के कारण कर्म बन्ध होता है। अर्थात् राग द्वेषात्मक परिणाम एक चिकनाई है जिनसे खिंचकर कर्म रज आत्म प्रदेशों पर चिपक जाती है।

प्रश्न २—आश्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म ग्रहण करने वाले आत्मा के शुभ अशुभ परिणामों को आश्रव कहते हैं—ये कर्म आने के रास्ते हैं। इनके ५ भेद हैं:—

(१) मिथ्यात्व आश्रव, (२) अविरति आश्रव, (३) प्रमाद आश्रव, (४) कषाय आश्रव, (५) योगाश्रव।

(१) मिथ्यात्व आश्रव—विपरीत मान्यता तथा तत्व ज्ञान से अरुचि।

(२) अविरति आश्रव—त्याग नहीं करने की भावना एवं सांसारिक सुखों के प्रति अभिलाषा।

(३) प्रमाद आश्रव—आत्मिक कल्याण की तरफ आन्तरिक उत्साह का अभाव।

(४) कषाय आश्रव—आत्मा के अन्दर क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की गर्मी।

उत्तर—यों समझिये—एक आदमी किसी प्राणी को मारता है, मारने की अशुभ प्रवृत्ति तो प्राणातिपात-आश्रव है। और जिन कर्मों के कारण मारने की भावना हुई, वह है पुराना कर्म जिसे-प्राणातिपात पाप-स्थान कहते हैं। क्योंकि विना अण्डे के मुर्गी नहीं होती और विना मुर्गी के अण्डा नहीं होता-यों ही विना कर्म प्रेरणा के प्रवृत्ति नहीं होती, और विना प्रवृत्ति के कर्म नहीं वंधते, इसलिये दोनों का परस्पर सम्वन्ध है।

प्रश्न ७—अध्यवसाय किसे कहते हैं?

उत्तर—आत्मा की प्रवृत्ति दो तरह की होती है, एक वाह्य और एक आभ्यन्तर। वाह्य रूप से जो प्रवृत्ति होती है उसे योग कहते हैं। और आभ्यन्तर रूप से जो प्रवृत्ति होती है उसे अध्यवसाय कहते हैं। अध्यवसाय, परिणाम, लेश्या, आदि योग वर्गणा के अन्तर्गत हैं। ये मनोयोग रहित जीवों के भी होते हैं और शुभ अशुभ दोनों तरह के हैं।

प्रश्न ८—लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर—पुद्गलों के अनुसार आत्मा के भले बुरे परिणामों को लेश्या कहते हैं। लेश्यायें ६ हैं—

(१) कृष्ण, (२) नील, (३) कापोत, (४) तेजः, (५) पद्म, (६) शुक्ल।

पहली तीन लेश्याये अशुभ है और शेप तीन शुभ है। इनको सरलता से समझने के लिए यह दृष्टान्त वहुत उपयुक्त है, जैसे-६ मनुष्य जामुन खाने चले। वृक्ष को देख कर एक वोला कि इस वृक्ष को काटो और जामुन खा लो, दूसरे ने कहा मोटी मोटी शाखाएँ काटो समूचे वृक्ष को मत विगाड़ो, तीसरे ने निवेदन

किया कि भाई छोटी छोटी टहनियां काट लो, मोटी व्यर्थ न काटो, चौथे ने सलाह दी कि फूलों के गुच्छे ही बहुत हैं–टहनियों को काटने से क्या लाभ होगा, पांचवे ने बतलाया कि गुच्छों को तोड़ना व्यर्थ है. केवल पक्के २ फल तोड़ लो, यह सब सुन कर छटे ने कहा कि पक्के फल टूटे हुए नीचे काफी पड़े हैं, इनसे ही भूख मिटा लो, परन्तु तोड़ो मत।

ऊपर के दृष्टान्त मे पहले पहले पुरुषों की अपेक्षा अगले अगले पुरुषों की भावना क्रमशः हल्की है। पहले पुरुष के परिणाम को कृष्ण लेश्या यावत् छठे पुरुष के परिणाम को शुक्ल लेश्या समझना चाहिये।

लेश्या के द्रव्य, भाव ऐसे दो भेद भी किये गये हैं। जिन पुद्गलों के सहयोग से आत्मा के अच्छे या बुरे परिणाम होते हैं उन पुद्गलों का नाम 'द्रव्य लेश्या' है और आत्मा का परिणाम 'भाव लेश्या' है।

प्रश्न ६—लेश्या युक्त जीवों के विचार कैसे होते हैं?

उत्तर—(१) पांच आश्रवों में प्रवृत्त होना, मन, वचन, काया का संयम न करके क्रूरता के साथ काम करना, कृष्ण लेश्या के परिणाम है।

(२) कपट करना, निर्लज्ज, लोलुप और काम भोगों में फंसे रहना–नील लेश्या के परिणाम है।

(३) काम करने और बोलने में कुटिलता रखना, दुखदायी भाषा बोलना,–कापोत लेश्या के परिणाम हैं।

(४) नम्रता, सरलता और धर्म कार्यों में रुचि रखना तेजो लेश्या के परिणाम हैं।

(५) कषायों की कमी, कम बोलना, आत्म संयम रखना, इन्द्रियों के विकारों को जीतना–आदि आदि पद्म लेश्या के परिणाम हैं।

(६) वीतराग की सी भावना रखना, मन पर काबू करना, आदि शुक्ल लेश्या के परिणाम हैं।

तेरहवीं कलिका

प्रश्न १—कर्म बन्ध कैसे रुकेगा ?

उत्तर—संवर से।

प्रश्न २—संवर किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म का निरोध करने वाले आत्मा के परिणाम (भावना) को संवर कहते हैं। जैसे–रास्ता बन्द कर देने पर आना जाना रुक जाता है, वैसे ही प्रतिज्ञा–त्याग करने पर आश्रव रूपी रास्ता रुक जाता है, जिससे कर्म आ नहीं सकते हैं। इसलिए संवर, आश्रव का विरोधी है। संवर मुख्य रूप से पांच हैं–

(१) सम्यक्त्व संवर (२) व्रत संवर (३) अप्रमाद संवर (४) अकषाय संवर (५) अयोग संवर।

(१) सम्यक्त्व संवर–विपरीत मान्यता का त्याग करने को सम्यक्त्व संवर कहते हैं। यद्यपि सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान में आ जाती है किन्तु वहां त्याग न होने से सम्यक्त्व संवर नहीं है। वह तो व्रत संवर होने पर ही होता है।

(२) व्रत संवर–आशा तृष्णा के त्याग को व्रत संवर कहते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) देश विरति (५ वां गुणस्थान) (२) सर्व विरति (छठें से चौदहवें गुणस्थान तक)।

(३) अप्रमाद संवर–धार्मिक क्रियाओं में आलस्य को छोड़

कर उत्साही बनना अप्रमाद संवर है। यह ७ वें से १४ वें गुण-स्थान तक होता है।

(४) अकषाय संवर—क्रोधादि कषायों का नाश हो जाना अकषाय संवर है। यह ११ वे से १४ वें गुणस्थान तक होता है।

(५) अयोग संवर—मन, वचन काया की शुभ अशुभ क्रियाओं का रुक जाना अयोग संवर है। यह पूर्ण रूपसे १४ वें गुणस्थान में ही होता है। साधु के उपवास आदि के द्वारा शुभ योग का रोकना भी इसी का आंशिक रूप है।

पहले के दो संवर त्याग करने से होते हैं। आगे के तीन संवर आत्मा की उज्ज्वलता होने से स्वयं हो जाते हैं। यद्यपि पन्द्रह आश्रवों का समावेश योग आश्रव में हो सकता है तथापि १५ आश्रवों के त्याग का समावेश अयोग संवर में नहीं होग बल्कि व्रत संवर में होगा, यहां यह समझ लेना भी जरूरी है।

प्रश्न ३—पुराने कर्मों को कैसे मिटाया जा सकता है?

उत्तर—निर्जरा से। मन, वचन, काया की शुभ प्रवृत्ति से आत्मा के साथ जुड़े हुए कर्म झड़ते है जिससे कुछ अंशों में आत्मा उज्ज्वल होती है, उसका नाम निर्जरा है। निर्जरा अर्थात् कर्मों का झड़ना।

निर्जरा दो प्रकार की है—(१) सकाम (२) अकाम।

प्रश्न ४—सकाम निर्जरा किसको कहते हैं?

उत्तर—आत्म विशुद्धि के लक्ष्य से की जाने वाली शुभ योग की प्रवृत्ति सकाम निर्जरा है।

प्रश्न ५—अकाम निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर—आत्म विशुद्धि के लक्ष्य के विना की जानेवाली शुभ योग की प्रवृत्ति—अकाम निर्जरा है।

प्रश्न ६—क्या तपस्या आदि निर्जरा है ?

उत्तर—हां, निर्जरा ही है—तप के ६ वाह्य (प्रकट दीखने-वाले) और ६ आभ्यन्तर (विना प्रकट दिखे विना होनेवाले) ऐसे १२ भेद हैं।

(१)अनशन—कुछ दिन या जीवन भर के लिये खाने पीने का त्याग करना अनशन है। उपवास से कम तपस्या ऊनोदरी में गिनी जाती है।

(२) ऊनोदरी—खाने पीने आदि उपयोग में आने वाली वस्तुओं की आवश्यकता की कमी करना ऊनोदरी है। द्रव्यों की ऊनोदरी द्रव्य ऊनोदरी है। कपायादि की ऊनोदरी भाव ऊनो-दरी है।

(३) भिक्षाचरी—विविध प्रकार के अभिग्रहों [प्रतिज्ञाओं] से वृत्तियों को संकोचना, जैसे—अमुक अमुक घर के सिवाय भोजन नहीं करूंगा। अमुक आदमी खाने के लिए न कहेगा तव तक नहीं खाऊंगा, आदि आदि।

(४) रस परित्याग—दूध, दही, घी, मिठाई, तेल, गुड़, चीनी आदि रस वाली चीजों को छोड़ना।

(५) कायक्लेश—आत्म कल्याण की भावना से शरीर द्वारा कष्ट सहन करना, जैसे—सर्दी में या धूप में वैठ कर ध्यान, भजन, तपस्या आदि करना, किन्तु इन सब में हिंसा, झूंठ, यश-लिप्सा आदि नही होनी चाहिये।

(६) **प्रति संलीनता**–इन्द्रियों को और मन, वचन, काया को बुरी चेष्टा से हटाना एवं अच्छी चेष्टा में लगाना। क्रोध, मान माया, लोभ को त्यागना तथा कामोद्दीपक सामग्री सहित स्थान में निवास न करना।

(७) **प्रायश्चित्त**–अपने किये हुए दोषों की शुद्धि के लिये तपस्या आदि की शुभ क्रिया करना प्रायश्चित है, जिसमें पश्चात्ताप से लेकर बड़ी से बड़ी तपस्या आदि भी शामिल है।

(८) **विनय**–देव, गुरु और धर्म का सम्मान करना, उनकी आशातना नहीं करना अर्थात् मानसिक, वाचिक, एवं कायिक अभिमान का परित्याग करना।

(९) **वैयावृत्य**–आचार्य, उपाध्याय आदि की सेवा भक्ति करना।

(१०) **स्वाध्याय**–धार्मिक शास्त्रों का विधि सहित अध्ययन करता।

इसके पांच भेद है—[१] शब्द या अर्थ का पाठ लेना–वाचना है। [२] शंका दूर करने अथवा विशेष निर्णय के लिए पूछना, प्रच्छना है।

[३] शब्द, पाठ या उसके अर्थ का मन में चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है।

[४] सीखे हुए पाठ का उपयोग पूर्वक पुनरावर्तन करना परिवर्तना है।

[५] जानी हुई वस्तु का रहस्य समझना अथवा धर्म का कथन करना धर्मोपदेश है।

(११) ध्यान—मन को अशुभ प्रवृत्ति से हटा कर शुभ प्रवृत्ति में एकाग्र करना। इसके ४ भेद हैं—

(१) दुःखी आदमी का ध्यान, रोना-पीटना आदि—आर्त्तध्यान है।

(२) हिंसा, झूठ आदि के लिये किया गया ध्यान—रौद्र ध्यान है।

(३) धर्म से सम्बन्ध रखने वाला ध्यान—धर्म ध्यान है।

(४) स्वभाव में लीनता—शुक्ल ध्यान है।

पहले दो ध्यान दुर्ध्यान है। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान निर्जरा के भेद हैं क्योंकि इनसे कर्म टूटते हैं।

(१२) कायोत्सर्ग-शरीर की हलन-चलन आदि क्रिया को रोक कर धर्म में लीन हो जाना।

प्रश्न ७—संवर और निर्जरा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—संवर का अर्थ है अशुभ योगों से निवृत्ति करना। निर्जरा का अर्थ है—शुभ योगों में प्र वृत्ति करना। जैसे—उपवास में भोजन का त्याग किया—यह है संवर, और वहाँ कष्ट होने पर शुभ भावना होना, शुभ योग की प्रवृत्ति होना है, निर्जरा। जहाँ संवर होगा, वहाँ निर्जरा होगी ही, और जहाँ निर्जरा है, वहाँ संवर हो भी सकता है, और नहीं भी।

चौदहवीं कलिका

प्रश्न १—निर्जरा और मोक्ष में क्या भेद है ?

उत्तर—आत्मा की आंशिक—(थोड़ी) उज्ज्वलता निर्जरा है, और पूर्ण उज्ज्वलता मोक्ष हैं।

प्रश्न २—मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनादि काल से जुड़े हुये कर्मों का आत्मा से सदा के लिये सम्पूर्ण रूप से छूट जाने का नाम मोक्ष है। मुक्ति, निर्वाण, अपवर्ग, सिद्धि आदि मोक्ष के ही नाम है।

प्रश्न—३ मोक्ष की प्राप्ति किन किन उपायों से होती है ?

उत्तर—निम्न चार उपायों सेः—

(१) ज्ञान—तत्वों की जानकारी।

(२) दर्शन—तत्वों पर श्रद्धा।

(३) चारित्र—आते हुये कर्मों को रोकना।

(४) तप—आत्मा के साथ जुड़े हुये कर्मों का नाश।
मोक्ष के चार साधन ये भी हैं—दान, शील, तप, भावना।

इन चारों उपायों से हर एक जीव मोक्ष पा सकता है फिर चाहे वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो, शूद्र हो, पुरुष हो, स्त्री

हो, जैन साधु के वेष में हो तथा-भले ही गृहस्थ के वेष में हो। जैन दर्शन वेष भूषा को उतना महत्व नहीं देता जितना कि गुणों को देता है।

प्रश्न ४—मोक्ष पा लेने के बाद प्राणी फिर संसार में आते हैं या नहीं?

उत्तर—जैसे चने भुन जाने के बाद कभी नहीं उगते वैसे ही कर्म बीज जल जाने के बाद मुक्त जीव फिर कभी संसार में नहीं आते अर्थात् जन्म धारण नहीं करते।

प्रश्न ५—मुक्त आत्मायें कहाँ रहती हैं?

उत्तर—ऊपर ही ऊपर लोक के किनारे पर ईषत प्राग्-भारा नाम की पृथ्वी है जिसे सिद्ध-शिला भी कहते हैं। वह ४५ लाख योजन लम्बी चौड़ी है, जहाँ पर जाकर मुक्त आत्मायें ठहरती हैं।

प्रश्न ६—मुक्त आत्मा ऊपर ही क्यों जाती है?

उत्तर—कर्मों से मुक्त होने के कारण आत्मा हल्की होती है और हल्कीचीज हमेशा ऊपर जाती हुई देखी जाती है। जैसे-धुआँ हल्का होने के कारण ऊपर जाता है। और मुक्त आत्मा शरीर नहीं होने से तिरछी भी नहीं जा सकती। अलोक में धर्मास्तिकाय (गति में सहायक) न होने के कारण लोक के किनारे पर ही उन्हें रुक जाना पड़ता है।

प्रश्न ७—सिद्धों में कोई भेद होता है या नहीं?

उत्तर—सिद्ध कर्म मुक्त होते हैं इसलिये उनमें भेद नहीं होता किन्तु पूर्व अवस्था के अनुसार उनके १५ भेद किये जा सकते हैं।

[१] तीर्थ सिद्ध— अरिहन्त के द्वारा तीर्थ की स्थापना होने

के बाद जो मोक्ष पाते हैं। जैसे-प्रथम गणधर, ऋषभसेन, और गोतम स्वामी आदि।

[२] अतीर्थ सिद्ध—तीर्थ स्थापना से पहले मुक्त होने वाले जैसे-मरुदेवी आदि।

[३] तीर्थङ्कर सिद्ध—तीर्थङ्कर होकर, मुक्त होने वाले। जैसे-२४ तीर्थङ्कर।

[४] अतीर्थङ्कर सिद्ध—तीर्थङ्कर के अतिरिक्त अन्य मुक्त होने वाले। जैसे-गज सुकुमार आदि।

[५] स्वलिङ्ग सिद्ध—जैन साधुओं के वेष में मुक्त होने वाले। जैसे-आदिनाथ भगवान आदि।

[६] अन्यलिङ्ग सिद्ध—अन्य साधुओं के वेष में मुक्त होने वाले। जैसे-शिवराज ऋषि आदि।

[७] गृहलिङ्ग सिद्ध—गृहस्थ के वेष में मुक्त होने वाले। जैसे-सुमति के छोटे भाई नागिल आदि।

[८] स्त्रीलिङ्ग सिद्ध—स्त्री दशा में मुक्त होने वाले। जैसे-चन्दन बाला आदि।

[९] पुरुषलिङ्गसिद्ध—पुरुष दशा में मुक्त होने वाले। जैसे-गणधरादि।

[१०] नपुंसकलिङ्ग सिद्ध— कृत नपुंसक दशा में मुक्त होने वाला। जैसे-गांङ्गेय, अनगार आदि।

[११] प्रत्येकबुद्ध सिद्ध—किसी एक निमित्त से विरक्ति पाकर दीक्षित होकर मुक्त होने वाले। जैसे-नमिराज ऋषि।

[१२] स्वयंबुद्ध सिद्ध—स्वयं बोधि पाकर मुक्त होने वाले। जैसे–मृगापुत्रादि।

[१३] बुद्धबोधित सिद्ध—उपदेश से बोधि पाकर मुक्त होने वाले। जैसे–मेघकुमार आदि।

[१४] एकसिद्ध—एक समय में एक जीव सिद्ध होता है, वह। जैसे–महावीर स्वामी।

[१५] अनेकसिद्ध—एक समय में अनेक जीव सिद्ध होते हैं। जैसे–श्री ऋषभदेव भगवान्।

पन्द्रहवीं कलिका

प्रश्न १—यह जगत् क्या है ?

उत्तर—धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव इन छहों का सामूहिक नाम जगत, संसार सृष्टि या लोक है। जैन परिभाषा में इन छहों को षड्द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न २—द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें गुण और पर्याय रहते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य कभी नष्ट नहीं होता। जैसे—जीव द्रव्य है।

प्रश्न ३—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्य से कभी अलग नहीं होता हो—उसे गुण कहते हैं, जैसे-जीव द्रव्य का गुण है, चेतना, जो सदा जीव में रहती है। अग्नि का गुण है, उष्णता।

प्रश्न ४—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय का अर्थ है, अवस्था—पहले की आकृति को छोड़कर नई आकृति धारण करना। जैसे, जीव का बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि अनेक अवस्थायें।

प्रश्न ५—छः द्रव्य कौन से हैं ?

१. धर्मास्तिकाय—(Medium of motion for soul

and matter. हिलने चलने वाले पदार्थों को हिलने चलने में सहायता देने वाले द्रव्य का नाम धर्मास्तिकाय है।

२. अधर्मास्तिकाय—(Medium of rest for soul and matter) ठहरने वाले पदार्थों को ठहरने में सहायता करने वाले द्रव्य का नाम अधर्मास्तिकाय है।

३. आकाशास्तिकाय—(Space) पदार्थों को आधार देने वाले द्रव्य का नाम आकाशास्तिकाय है।

४. काल—(Time) जो जीव अजीव पर वर्तता है और उनकी नवीन, पुरातन, आदि अवस्थाओं के परिवर्तन में सहायक होता है उसको काल कहते हैं। समय, घड़ी, दिन, मास, युग आदि इसी के विभाग हैं।

५. जीवास्तिकाय—(Souls)जिसमें चेतना शक्ति हो, वह जीवास्तिकाय है।

६. पुद्गलास्तिकाय—(Matter and Energy) स्पर्श, रस, गंध और रूप वाले द्रव्य को पुद्गलास्तिकाय कहते हैं। शब्द, धूप. छाया, अन्धकार, प्रकाश आदि भी पुद्गल ही है।

ये छहों द्रव्य अनादि अनन्त हैं, अर्थात् न कभी बने और न कभी नष्ट होंगे। इसलिये कहा जाता है कि षट्द्रव्यात्मक संसार किसी ईश्वर विशेष का बनाया हुआ न होकर स्वाभाविक और अनादि अनन्त है।

प्रश्न ६—अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनेक प्रदेशों के समूह (राशि) को अस्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न—काल अस्तिकाय क्यों नहीं है ?

उत्तर—जैसे अन्य पांचों द्रव्य अनेक प्रदेशों के समूह हैं, वैसे काल समूह रूप न हो कर एक एक (कालाणु) स्वतन्त्र और अलग अलग है। इसलिए वह अस्तिकाय नहीं है।

प्रश्न ८—स्कन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—परमाणुओं के समूह को स्कन्ध कहते हैं।

प्रश्न ९—देश किसे कहते हैं ?

उत्तर—समूह के बुद्धि कल्पित एक भाग को देश कहते हैं, जैसे–सौ गज कपड़े में से एक गज कपड़े की अलग कल्पना करना सौ गज रूप स्कन्ध का एक देश है।

प्रश्न १०—प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्कन्ध से जुड़े हुए उसके सबसे सूक्ष्म भाग को प्रदेश कहते हैं। यह परमाणु जितना ही बड़ा होता है, किन्तु स्कन्ध से जुड़े रहने के कारण ही प्रदेश कहलाता है।

प्रश्न ११—परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस अंश का दूसरा अंश न हो सके वह सबसे छोटा अणु 'परमाणु' कहलाता है। आधुनिक विज्ञान जो ९२ प्रकार के परमाणु मानता है और उनके भी अनेक टुकड़े मानता है, जैन दृष्टि के अनुसार वास्तव में वह परमाणु न होकर

स्कन्ध ही हैं, चूंकि परमाणु में कोई भी प्रकार का भेद छोटा-बड़ा पन नहीं होता है और न ही परमाणु के टुकड़े हो सकते हैं।

प्रश्न १२—पुद्‌गल के कितने भेद हैं ?

उत्तर—छः भेद हैं —१. अति स्थूल
२. स्थूल
३. स्थूल सूक्ष्म
४. सूक्ष्म स्थूल
५. सूक्ष्म
६. अति सूक्ष्म

१. जिस पुद्‌गल स्कन्ध का छेदन-भेदन तथा अन्यत्र हवन सामान्य रूप से हो सके, वह पुद्‌गल-स्कन्ध अतिस्थूल (Solid) कहलाता है, जैसे—भूमि पत्थर, पर्वत आदि।

२. जिस पुद्‌गल स्कन्ध का छेदन-भेदन न हो सके किन्तु अन्यत्र वहन हो सके, उस पुद्‌गल स्कन्ध (Liquids) को स्थूल कहते हैं। जैसे—घृत, जल, तेल आदि।

३. जिस पुद्‌गल स्कन्ध का छेदन-भेदन व अन्यत्र वहन कुछ भी न हो सके, जैसे - नेत्र से दृश्यमान पुद्‌गल स्कन्ध (Visible Energies) को स्थूल सूक्ष्म कहते हैं जैसे—छाया, आतप आदि।

४. नेत्र को छोड़कर चार इन्द्रियों के विषय भूत पुद्‌गल स्कंध (Ultra visible but intra sensual matter) को सूक्ष्म स्थूल कहते हैं जैसे—वायु तथा अन्य प्रकार की गैसें।

५. वे सूक्ष्म पुद्‌गल स्कन्ध जो अतीन्द्रिय हैं (Ultra sensual

matter) को सूक्ष्म कहते हैं। जैसे मनोवर्गणा, भाषा वर्गणा, काय वर्गणा आदि के सूक्ष्म पुद्गल।

६. ऐसे पुद्गल स्कन्धों को जो भाषा वर्गणा व मनोवर्गणा के स्कन्धों से भी सूक्ष्म हो अतिसूक्ष्म (Ultimate Atom) कहते हैं। जैसे—द्विप्रदेशी स्कन्ध काय आदि।

प्रश्न १३—क्या धर्मास्ति काय जीव पुद्गलों को चलाती है?

उत्तर—नहीं। जीव और पुद्गल अपनी शक्ति से ही चलते हैं, किन्तु धर्मास्तिकाय उनको चलाने में सहायक होती है। जैसे-रेल के चलने में पटरियां। और वैसे ही अधर्मास्ति काय सिर्फ ठहरनेमें सहायता देती है, जैसे-पथिक को वृक्ष की छाया।

प्रश्न १४—आकाश के कितने भेद हैं?

उत्तर—आकाश के दो भेद हैं।

१. लोकाकाश

२. अलोकाकाश

लोकाकाश—आकाश में जहां तक पूर्वोक्त पांचों द्रव्य हैं वहां का आकाश लोकाकाश कहलाता है। इसके तीन भेद हैं:—

१. अधोलोक।

२. मध्यलोक।

३. उर्ध्वलोक।

अलोकाकाश—जहां पर सिर्फ आकाश ही है, जहां न जीव है, न पुद्गल, न धर्मास्ति न अधर्मास्ति और न काल। इसका कोई भेद नहीं है, एकाकार है।

प्रश्न १५—अधोलोक कहां है ?

उत्तर—नीचे लोक को अधोलोक कहते हैं। मेरु पर्वत की समतल भूमि से नौ सो योजन नीचे जाकर अधोलोक शुरू होता है, जहां सातों नरक, भवन पति देव, व कुछ व्यन्तर देव भी रहते हैं। यह सात रज्जू से कुछ अधिक है।

प्रश्न १६—मध्य लोक कहां है ?

उत्तर—उर्ध्वलोक और अधोलोक के बीच १८ सौ योजन का (ऊंचा नीचा) और एक रज्जू का लम्बा चौड़ा मध्यलोक है। इसमें असंख्य समुद्र और द्वीप है। और सबके बीच जम्बू द्वीप है। जम्बू द्वीप के बीचोबीच मेरु पर्वत है। हमारा भरत क्षेत्र इसके एक क्षेत्र में है। कुछ व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव, चक्रवर्ती, अरिहन्त, साधु साध्वी आदि मध्यलोक में ही होते हैं।

प्रश्न— १७—उर्ध्व लोक कहाँ हैं ?

उत्तर—यह मेरु पर्वत की समतल भूमि से नौ सो योजन ऊपर जाने पर शुरू होता है और अलोक पर जाकर पूरा होता है। यह सात रज्जू से कुछ कम है। उर्ध्व लोक में वैमानिक देव और उनके ऊपर सिद्ध भगवान हैं। उनके आगे से अलोक शुरू हो जाता है जहाँ केवल शून्यता है।

प्रश्न १८—राजू किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक हजार भार (३,८१,१२,६७० मन का एक भार) का गोला पूरे वेग के साथ उर्ध्व लोक से सीधा फेका जाये वह ६ महीने और करीब ७ दिन में जितनी दूर जाये, उसे एक राजू कहते हैं ! चमकिये मत ! जरा देखिये कि आधुनिक विज्ञान भी लोक को कितना बड़ा मानता है। आईन्स्टीन के मतानुसार एक

प्रकाश किरण जो सेकिन्ड में १,८६,००० मील चलती है उस प्रकाश किरण को सारे लोक की परिक्रमा करने में १२ करोड़ वर्ष लग जायेंगे। अब देखिये कि दोनों विचारों में कितनी समानता है।

प्रश्न १६—काल का भी भेद है क्या ?

उत्तर—जैसे पुद्गल के छोटे से छोटे भाग को परमाणु कहते हैं वैसे ही काल के छोटे से छोटे भाग को समय-कहते हैं। हमारे आँख मीच कर खोलने में तो असंख्य समय बीत जाते हैं। असंख्य समयों का नाम आवलिका है।

२ समय से ४८ मिनिटमें एक समय तक का काल अन्तर्मुहूर्त कहलाता है। ४८ मिनिट का एक मुहुर्त होता है। एक मुहुर्त में २,६७,७७,२,१,६ आवलिकाएं होती हैं।

प्रश्न २०—उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं !

उत्तर—जिस काल में प्राणियों के शरीर, सुख, शक्ति, आयुष्य बढ़ते जाये, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। जैसे सांप, पूंछ से मुख की तरफ क्रमशः मोटा होता जाता है वैसे ही ये सब बातें बढ़ती जाती हैं। इसके ६ आरे (युग) होते हैं।

प्रश्न २१—अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस काल में प्राणियों के आयुष्य शरीर शक्ति सुख घटते जाये उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। जैसे—सांप मुंह से पूछ की ओर पतला होता जाता है। वैसे ही ये सब बातें घटती जाती हैं। इसके भी ६ आरे (युग) होते हैं।

ये दोनों १०–१० क्रोडाक्रोड सागर के होते हैं।

प्रश्न २२—कालचक्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्सर्पिणी और अपसर्पिणी काल, इन दोनों को मिला कर काल चक्र होता है। यह २० क्रोडाक्रोड सागर का होना है।

प्रश्न २३—जीव कितना लम्बा चौड़ा है?

प्रत्येक जीव के प्रदेश लोकाकाश जितने हैं। किन्तु दीपक की तरह संकोच विस्तार स्वभाव का होने के कारण अपने प्राप्त शरीर के बराबर है?

ये छः द्रव्य है। जो द्रव्य रूप में सदा विद्यमान रहते हैं कभी भी नष्ट नहीं होते।

सोलहवीं कलिका

प्रश्न १—हमारा धर्म कौनसा है ?

उत्तर—जैन धर्म ।

प्रश्न २—जैन धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन (वीतराग) को भगवान मानने वाले को जैन कहते हैं । अथवा यूं समझिये कि 'जन' नाम है मनुष्य का, उस पर सदाचार और सद्विचार की दो मात्राएं " ै " लगाने पर वह 'जैन' हो जाता है ।

प्रश्न ३—जैन शब्द धर्म का वाचक है या जाति का ?

उत्तर—जैन धर्म है, जाति नहीं है । किसी भी जाति का व्यक्ति 'जैन' बन सकता है, बशर्ते कि उसके आचार विचार पवित्र हों । अनेक जातियों के व्यक्ति जैन हुए हैं । जैसे–महावीर स्वामी क्षत्रिय जाति के थे । गौतम सवमी ब्राह्मण थे, जम्बू स्वामी वैश्य (बनिये) थे । हरिकेशी मुनी, शूद्र थे । आनन्द श्रावक पटेल (जाट); सकडाल श्रावक, कुम्भकार; सुलसा श्राविका, बढ़ई, और गौशालक डकौत था ।

प्रश्न ४—जिन किसे कहते हैं ?

उत्तर—राग-द्वेष, आदि दोषों को जीतने वाले वीतरागी सर्वज्ञ

पुरुष 'जिन' कहलाते हैं। उनका बताया हुआ धर्म-(मुक्ति का रास्ता) जैन धर्म है। जिनको देव अर्हत् अरिहन्त भगवान् आदि भी कहते हैं। देव, गुरु, धर्म इन तीन तत्वों में पहले (तीन रत्न) 'देव' हैं ?

प्रश्न ५—गुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर—पाँच महाव्रतों का पालन करने वाले साधु को गुरु कहते हैं।

प्रश्न ६—पाँच महाव्रत कौन से हैं।

उत्तर—(१) अहिंसा—किसी भी प्राणी की किसी भी प्रकार से हिंसा न करना।

(२) सत्य—किसी भी प्रकार का झूंठ या हिंसात्मक शब्द न बोलना।

(३) अचौर्य—विना पूछे किसी की कोई चीज न उठाना।

(४) ब्रह्मचर्य—अब्रह्म (सद्गुण नाशक वृत्तियों) का त्याग।

(५) अपरिग्रह—वस्तु पर ममत्व नहीं रखना।

पाँच महाव्रतों की रक्षा के लिये ५ समिति और ३ गुप्ति ये आठ नियम हैं, जिन्हें आठ प्रवचन माता कहते हैं।

(१) इर्या समिति—देख देख कर चलना।

(२) भाषा समिति—विचारपूर्वक निर्दोष भाषा बोलना।

(३) ऐषणा समिति—निर्दोष शुद्ध भिक्षा लेना।

(४) आदान निक्षेप समिति—किसी भी वस्तु को उठाने या धरने में सावधानी रखना।

(५) परिष्ठापनिका समिति—मल मूत्र आदि देख भाल कर निर्दोष और एकान्त स्थान पर गिराना।

(१) मनोगुप्ति—मन को बुरी भावना से हटाना अर्थात मन का संयम।

(२) वचन गुप्ति—वचन से बुरा न बोलना अर्थात् वचन का संयम।

(३) काय गुप्ति—शरीर को असद् प्रवृत्ति से रोकना, अर्थात् काया का संयम।

समिति का अर्थ है शुद्ध कार्यों में प्रवृत्ति, और गुप्ति का अर्थ है अशुद्ध कार्यों से निवृत्ति।

उपरोक्त १३ नियमों का आत्म-साक्षी से पालन करना ही जैन साधु का स्वरूप है।

इसके अलावा साधु की जीवनचर्या के कुछ विशेष नियम ये हैं:—

कच्ची मिट्टी, कच्चा नमक, बिजली, कच्चा पानी, अग्नी, हवा, (पंखों आदि की) कच्ची सब्जी आदि को सजीव मानते हैं। इसलिये इनका उपयोग नहीं कर सकते न करवा सकते हैं और न करने की अनुमति भी दे सकते।

अहिंसा की साधना के लिये देख देख कर चलते हैं, और जहाँ चलते हुए जीव जन्तु दिखाई नहीं देते हों वहाँ अपने ओघे (रजोहरण) से एक तरफ करके (प्रमार्जन) चलते हैं।

अपने लिये बनाये गये मकान, भोजन आदि का उपयोग भी नहीं कर सकते । वे उस्तरे आदि से हजामत नहीं बना सकते– किन्तु हाथ से ही केश-लुंचन करते हैं ।

२. वे किसी भी हालत में असत्य नहीं बोल सकते । मर्म घातक, पीड़ा कारी, सत्य भी नहीं बोल सकते । न्यायालय आदि में किसी के पक्ष या विपक्ष में साक्षी नहीं दे सकते । किसी को हिंसात्मक आदेश, भविष्य का शुभ अशुभ फल, लाभ हानि आदि भी नहीं बता सकते हैं ।

इनका आदर्श है:—

"बहुँ सुणेइ कण्णेहिं बहुँ अच्छीहिं पिच्छई ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खूअक्खाउ मरिहई ।"

साधु कानों से सुनता बहुत है, आंखों से देखता बहुत है, किंतु देखा सुना सब मुंह से कह नहीं सकता है ।

३. वे शिष्य, पात्र, वस्त्र आदि वस्तुये कोई देनेवाला, स्वेच्छा से देता हो तभी ले सकते हैं ।

किसी की उधार लेकर दी हुई, छीनी हुई वस्तु नहीं ले सकते ।

धर्मार्थ कोष (Charitable institution) से औषधि, वस्त्र, पात्र तथा खाने पीने की वस्तु नहीं ले सकते ।

४. वे पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करते हैं ।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए स्त्रियों के साथ एक ही मकान में रात भर नहीं रह सकते ।

उत्तेजक (विकार पैदा करने वाला) भोजन नहीं कर सकते ।

अकेली स्त्रीसे न भिक्षा ले सकते हैं, न बात ही कर सकते है। स्त्री मात्र का स्पर्श नहीं कर सकते।

चारपाई, कुर्सी आदि को सोने बैठने आदि के उपयोग में नहीं ले सकते।

५. किसी भी प्रकार का धन पास में नहीं रख सकते। न कहीं पर जमा करवा सकते, उनके पास निजी सम्पत्ति कुछ भी नहीं होती।

किसी भी वस्तु पर "अधिकार" नहीं रख सकते।

डाक्टर, मजदूर, भक्त आदि से आपरेशन, बोझा उठाना, पगचम्पी आदि किसी भी प्रकारकी शारीरिक सेवा नहीं ले सकते।

टेलीफोन, एवं तार आदि विद्युत्-यन्त्र से संदेशों का आदान-प्रदान तथा रेल, मोटर आदि कोई भी सवारी व पैरों में जूते, पादुका आदि कोई भी वस्तु का उपयोग नही करते।

पहनने, ओढ़ने आदि का कपड़ा भी निर्धारित मर्यादा से अधिक नहीं रख सकते।

वे अपनी वस्तु को आलमारी आदि में या गृहस्थ के पास रख कर नहीं जा सकते।

६. किसी भी विषम परिस्थिति में वे रात्रि को भोजन पानी आदि तो दूर रहा, दवाई, इन्जेंक्शन आदि भी नहीं ले सकते।

प्रश्न—धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिससे आत्म शुद्धि हो, वह धर्म है। आज तक के साहित्य में धर्म शब्द के अनेक अर्थ मिलते हैं। जिनको हम

तीन अर्थों में बांट सकते हैं-(१) स्वभाव (२) व्यवस्था और (३) आत्म शुद्धि—मोक्ष का उपाय।

(१) पहला अर्थ है वस्तु का स्वभाव-(गुण) जैसे-आग का धर्म उष्णता, पानी का धर्म शीतलता, कान का धर्म सुनना, आंख का धर्म देखना और नाक का धर्म सूंघना है।

(२) धर्म का दूसरा अर्थ है कर्तव्य, व्यवस्था या परम्परा। राष्ट्र की रक्षा, सामाजिक सहयोग, परिवार संरक्षण आदि इसके अन्तर्गत है। यह लौकिक कर्तव्य होने के नाते लोक व्यवहार या लोक धर्म भी कहलाता है।

(३) धर्म का तीसरा अर्थ है—आत्म शुद्धि का साधन। अर्थात् जिससे आत्मा की शुद्धि हो उसका नाम धर्म है। यह धर्म आत्मा से ही सम्बन्धित है। इसलिए इसको आत्मधर्म कहते हैं; आत्म-धर्म को समझने के लिए नीचे लिखे ७ प्रश्नोत्तरों को समझना चाहिये—

प्रश्न १—धर्म दया में है या हिंसा में?

उत्तर—दया में।

प्रश्न २—धर्म त्याग में है या भोग में?

उत्तर—त्याग में।

प्रश्न ३—धर्म भगवान् की आज्ञा में है या बाहर?

उत्तर—आज्ञा में।

प्रश्न ४—धर्म राग द्वेष के बढ़ाने में है या शान्त करने में?

उत्तर—राग द्वेष शान्त करने में।

प्रश्न ५—धर्म शरीर की शान्ति में है, या आत्माकी शांति में ?

उत्तर—आत्मा की शान्ति में।

प्रश्न ६—धर्म हृदय परिवर्तन में है, या बलात्कार में ?

उत्तर—हृदय परिवर्तन में।

प्रश्न ७—धर्म अमूल्य है या पैसों से मिल सकता है ?

उत्तर—अमूल्य है।

ऊपर के प्रश्नोत्तरों से तुरन्त समझ में आ जायेगा कि अमुक कार्यों में आत्म धर्म हुआ या सांसारिक कर्तव्य। संसारी लोगों को कार्य करने पड़ते हैं, परन्तु उनको यह ज्ञान होना चाहिये कि आत्म धर्म से आत्मा का कल्याण होता है और सांसारिक धर्म से संसार की व्यवस्था चलती है।

इन तीनों अर्थों का आधार भगवान् महावीर के शब्दों में धर्म के इन दस भेदों में मिलता है:—

(१) ग्राम धर्म—गांव की जो व्यवस्था होती है, वह ग्राम धर्म कहलाता है।

(२) नगर धर्म—नगर की जो व्यवस्था होती है, वह नगर धर्म कहलाता है।

(३) राष्ट्र धर्म—राष्ट्र की जो व्यवस्था होती है, वह राष्ट्र धर्म कहलाता है।

(४) पाषण्ड धर्म—पाषण्डी याने धर्म वंचक, उनका जो कार्य है वह पाषण्ड धर्म है।

(५) कुल धर्म—कुल का जो आचार होता है, वह कुल धर्म है।

(६) गण धर्म—गण (कुल समूह) की जो समाचारी (आचार मर्यादा) होती है, वह गण धर्म है।

(७) संघ धर्म—संघ (गण समूह) की जो समाचारी होती है वह संघ धर्म है।

(८, ९) श्रुत धर्म—चारित्र धर्म—आत्म उत्थान के हेतु (मोक्ष के उपाय) होने के कारण श्रुत अर्थात् सम्यक् ज्ञान और चारित्र ये दोनों क्रमशः श्रुत धर्म और चारित्र धर्म है।

(१०) अस्तिकाय धर्म—पंचास्तिकाय का जो स्वभाव है, वह अस्तिकाय धर्म है। जैसे–धर्मास्तिकाय का स्वभाव है चलने में सहायक बनना।

प्रश्न २—आत्म धर्म और लोकधर्म में क्या अन्तर है?

उत्तर—आत्म धर्म और लोक धर्म में मुख्यतः तीन अन्तर माने गये हैं:—

(१) लोकधर्म से दुनियां का व्यवहार चलता है। आत्म धर्म मोक्ष का उपाय, याने व्यक्ति की आत्म साधना है। जैसे–योग्य विवाह को लोग उचित मानते हैं। किन्तु आत्म धर्म में उसको कोई स्थान ही नहीं है। वहां ब्रह्मचर्य की साधना ही प्रमुख है।

(२) देश काल आदि के परिवर्तन के साथ साथ लोक धर्म भी बदलता है, किन्तु आत्म धर्म का स्वरूप सदा ही अपरिवर्तित रहता है। जैसे–आज से कुछ वर्ष पहले विधवा विवाह एक

सामाजिक कलंक गिना जाता था, किन्तु आज उसका खुले आम समर्थन करने वाले भी बहुत हैं। आत्म धर्म अब्रह्मचर्य को सर्वथा ही त्याज्य मानता है।

(३) लोकधर्म भिन्न भिन्न जाति और वर्गों में भिन्न भिन्न रूप से प्रचलित है; किन्तु आत्म धर्म का आचरण सब के लिये समान है।

इस प्रकार लोक धर्म व आत्म धर्म का भेद स्पष्ट समझ लेना चाहिये।

प्रश्न ३—दया किसे कहते हैं?

उत्तर—मन, वचन, काया से किसी का बुरा न सोचना, दुःख न देना, हिंसा न करना, दया है। तथा पाप व अन्याय के दल-दल में फंसती हुई अपनी या दुसरे की आत्मा को बचाना, रक्षा करना भी दया है।

प्रश्न ४—दया का स्वरूप क्या है?

उत्तर—प्रत्येक प्राणी अपने आयुष्य के बल से जीवित रहता है, और आयुष्य क्षय होने से मरता है, कोई जीवित रहता है, यह कोई दया नहीं है। कोई मरता है, यह कोई पाप नहीं है। नहीं मारना दया है, मारना हिंसा है जैसे कहा है—

"जीव जीवे ते दया नहीं, मरे ते हिंसा मत जाण।
मारणवाला ने हिंसा कही, नहीं मारे ते दया गुण खाण॥"

तथा—

असंयति जीव को जीवणो वंछे ते राग, मरणो वांछे ते द्वेष।
संसार समुद्र सूं तिरणो वंछे, ते वीतराग देव रो मार्ग॥

यानी—

किसी का असंयम मय जीना चाहना—राग है। मरना चाहना द्वेष है। प्रत्येक प्राणी की आत्मोन्नति की कामना करना धर्म है।

प्रश्न ५—दया अपनी होती है या अन्य की?

उत्तर—वास्तव में तो किसी को न मारना, यह पर-की दया (पर दया) अपने आप की ही दया है, (स्व दया) है। किसी को मारने वाला स्वयं अपना पतन करता है।

"तुलसी दया जु पार की, दया आपकी होय।
तू किणने मारै नहीं, तनै न मारे कोय॥"

किसी को नहीं मारने से पर की रक्षा अपने आप हो जाती है। इसके लिये इन तीन उदाहरणों को समझना चाहिये—

(१) चोर किसी सेठ साहब के बंगले पर चोरी कर रहे हैं, साधुओं ने देखा और उन्हें उपदेश दिया, उपदेश जादू कर गया, हृदय पलटा, चोरों ने जीवन भर के लिये चोरी छोड़ दी साथ २ धन भी बच गया।

(२) साधुओं का किन्हीं कसाइयों से पल्ला पड़ा। साधुओं के पास था क्या? सिर्फ उपदेश, उपदेश लग गया, कसाइयों ने जन्म भर के लिये अपना धन्धा छोड़ दिया, सैकड़ों बकरे अपने आप बच गये।

(३) एक बाबू जी जा रहे थे। किसी औरत को समय दिया हुआ था, मुनि जी के दर्शन बीच में ही हो गये, लगा उपदेश, और व्यभिचार को तिलांजली देकर सदाचारी बन गये। औरत आई और किसी भी तरह उसका मन चाहा न करने पर कुएं में कूद पड़ी।

समझ—

चोरी छूटी, धन बचा। हिंसा छूटी, बकरे बचे। व्यभिचार छूटा औरत मरी। पहला मुख्य फल है, दूसरा गौण। उसके लिए न साधु उत्तरदायी है, और न चोर, न हिंसक, और न व्यभिचारी। अगर दूसरे गौण फल को धर्म मानोगे, तो औरत के मरने पर पाप भी साधुओं के सिर बंधेगा यह किसी को मंजूर नहीं है। अतः सिद्धान्त यह निकला कि हृदय परिवर्तन ही धर्म है। धर्म का सम्बन्ध किसी के मरने या जीने से न होकर अहिंसक प्रवृत्ति से है।

प्रश्न ६—दान का अर्थ क्या है?

उत्तर—अपने और पराए हित (उपकार) के लिए देने का नाम दान है। जिस दान से संयम, त्याग की वृद्धि हो, उसमें धर्म है, और जिससे हिंसा, झूंठ, चोरी आदि बढ़े उसमें धर्म नहीं हो सकता। देने वाले की भावना शुद्ध हो, वस्तु शुद्ध हो, और लेने वाला (सुपात्र) शुद्ध हो, तभी शुद्ध दान हो सकता है। वैसे तो जैन शास्त्रों में दान के दस भेद कहे हैं:—जिनमें सब प्रकार के दान आ जाते हैं। जैसे—

(१) **अनुकम्पा दान**—दीन, अनाथ, रोगी आदि अनुकम्पनीय व्यक्तियों को दान देना।

(२) **संग्रह दान**—कष्ट में सहायता के लिए दान।

(३) **भयदान**—भय से दान देना।

(४) **कारुण्य दान**—शोक के सम्बन्ध में दान देना। जैसे—मृत कार्यों में दिया जाता है।

(५) लज्जा दान---लज्जा से दान देना।

(६) गर्वदान---यश गान सुन कर एवं बराबरी की भावना से दान देना।

(७) अधर्म दान---हिंसा आदि पांच आश्रव द्वार सेवन के लिये दान देना। जैसे-मनुष्यों को मरवाने के लिये दान देना। यह लोक व्यवहार में भी निन्दनीय है।

(८) धर्मदान--- प्राणी मात्र को अभय देना, सम्यक्त्व और चारित्र की प्राप्ति करवाना।

(९) करिष्यतिदान---लाभ के बदले की भावना से दान देना।

(१०) कृतदान---किये हुए उपकार को याद करके दान देना।

प्रश्न ७---सुपात्र का क्या अर्थ है ?

उत्तर---सुपात्र वही है, जो हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य सेवन और धन संग्रह नहीं करता है।

प्रश्न ८---संयती, असंयती, संयता-संयती का क्या अर्थ है ?

उत्तर---संयती---हिंसा आदि के सम्पूर्ण त्यागी को संयती कहते हैं, जैसे मुनि।

असंयती---हिंसा आदि का बिलकुल त्याग नहीं करने वाला असंयती कहलाता है।

संयातासंयती---हिंसा, आदि का कुछ त्याग किया हो,

कुछ खुली रखी हो, यह संयता-संयती है। जैसे-श्रावक।

धर्मी, अधर्मी, धर्माधर्मी, व्रति, अव्रति, व्रताव्रती आदि शब्दों की परिभाषा भी यही समझनी चाहिए।

प्रश्न ९—उपकार किसे कहते हैं ?

उत्तर—सहायता का नाम उपकार है। यह दो प्रकार का होता है—(१) धार्मिक, (२) सांसारिक।

धार्मिक उपकार—अज्ञानी को ज्ञानी बनाना, पापी को ज्ञानपूर्वक पाप से बचाना, कल्याण कामना से धर्म का उपदेश देना आदि २ धार्मिक उपकार है। इनसे आत्मिक कल्याण होता है।

सांसारिक उपकार—भूखे को रोटी देना, प्यासे को पानी पिलाना, गरीब को दो पैसे से सहायता करना, आदि आदि सांसारिक उपकार है। इनसे सांसारिक प्रेमभाव बढ़ सकता है।

प्रश्न १०—त्याग और भोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—भौतिक सुखों की लालसा को छोड़ना त्याग है। लालसा पूर्ति करना भोग है।

प्रश्न ११—राग द्वेष किसे कहते हैं ?

उत्तर—संयम रहित सुख की इच्छा राग है। दुःख की इच्छा द्वेष है। जैसे—द्वेष अपने पराये परिचित, अपरिचित आदि सभी पर हो सकता है, वैसे ही राग भी सभी पर हो सकता है।

राग और द्वेष से रहित तटस्थता को मध्यस्थ वृत्ति कहते हैं।

प्रश्न १२—श्रुत चारित्र का क्या अर्थ है ?

उत्तर—श्रुत का अर्थ है ज्ञान, हेय (छोड़ने योग्य), उपादेय (स्वीकार करने योग्य) का विवेक। चारित्र का अर्थ है—त्याग, सत्क्रिया—आचरण; हेय को छोड़कर उपादेय का आचरण करना ! ज्ञान है नेत्र ; क्रिया है चरण ! तभी तो कहा है "ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः" ।

प्रश्न १३—चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं। सर्व चारित्र और देश चारित्र।

सर्व चारित्र—सम्पूर्ण हिंसा आदि का त्याग।
देश चारित्र—हिंसा आदि का यथाशक्ति त्याग।

प्रश्न १४—सर्व चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पांच भेद हैं—

(१) सामायिक

(२) छेदोपस्थानीय

(३) परिहार विशुद्धि

(४) सूक्ष्म संपराय

(५) यथा ख्यात

सवथा सावद्ययोग-पापकारी प्रवृत्ति का त्याग करना सामयिक चारित्र है। सामयिक चारित्र को पांच महाव्रतों का रूप देना छेदोप स्थापनीय चारित्र कहलाता है।

गच्छ से अलग होकर जो साधु शास्त्रोक्त विधि से अठारह

महीनों तक एक विशिष्ट प्रकार का तप करते हैं। उसे परिहार विशुद्ध चारित्र कहते हैं।

४. सूक्ष्म संपराय—जिस चारित्र में कषाय बिलकुल सूक्ष्म होता है, उसको सूक्ष्म संपराय चारित्र कहते हैं।

५. यथा ख्यात—

वीतराग अवस्था के चारित्र को यथा ख्यात चारित्र कहते हैं। इस चारित्र वाले कभी स्खलना नहीं करते। देश चारित्र श्रावक में होता है, जिसका वर्णन अगले प्रकरण में देखें—

सत्रहवीं कलिका

प्रश्न १—श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जैन सिद्धान्तों का श्रद्धा पूर्वक पालन करने वाले गृहस्थ साधक को श्रावक कहते हैं। वैसे तो श्रावक शब्द के कई अर्थ होते हैं जैसे—सुनने वाला श्रावक, श्रद्धा रखने वाला श्रावक, सम्यक् दृष्टि श्रावक। किन्तु श्रावक शब्द का अर्थ—"सम्यक्त्व पूर्वक त्याग करने वाले" के लिये किया जाता है। जिसे जैन आगमों में श्रमणोपासक भी कहा गया है।

प्रश्न २—श्रावक के लिये कितने नियम हैं ?

उत्तर—मुख्य रूप से १२ नियम हैं। जिन्हें १२ व्रत कहते हैं-जिनमें ५ अणुव्रत और ७ शिक्षाव्रत हैं। भगवान् महावीर ने धर्म-साधना के दो रूप बतलाये हैं आत्मा और मन पर पूर्ण संयम करके समस्त सावद्य-योगों (पापकारी प्रवृत्तियों) का त्याग करने वाला अनगार धर्म (साधु धर्म), जिसका वर्णन आ चुका है।

और अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थ दशा में रहते हुए भी अधिक से अधिक संयम की ओर बढ़ने वाला आगार (श्रावक) धर्म।

प्रश्न ३—बारह व्रत कौन से है ?

उत्तर—१. अहिंसाणुव्रत

२. सत्याणुव्रत

३. अचौर्याणुव्रत
४. स्वदार संतोष परदार परित्यागाणुव्रत
५. इच्छा परमाणाणुव्रत
६. दिक् परिमाणव्रत
७. भोगोपभोग परिमाण व्रत।
८. अनर्थ दण्ड विरमण व्रत।
९. सामायिक व्रत।
१०. देशावकाशिक व्रत।
११. पौषधोपवास व्रत।
१२. अतिथि संविभाग व्रत।

१. अहिंसाणु व्रत—

छोटे बड़े सभी जीवों की (मानसिक वाचिक एवं कायिक) सम्पूर्ण हिंसा का त्याग न कर सकने के कारण यथा शक्ति हिंसा का त्याग करना अहिंसाणु व्रत है।

२. सत्याणु व्रत—

शक्ति के अनुसार असत्य का त्याग करना सत्याणु व्रत है।

३. अचौर्याणु व्रत—

शक्ति के अनुसार चोरी का त्याग करना अचौर्याणु व्रत है।

४. स्वदार सन्तोष परदार परित्यागाणु व्रत—

वेश्या व परस्त्री गमन त्याग करके स्वस्त्री से भी अब्रह्मचर्य का शक्ति के अनुसार त्याग करना।

५. इच्छा परिमाणाणु व्रत—

असीम इच्छाओं पर काबू करके परिग्रह का मर्यादा उपरान्त त्याग करना।

६. दिक् परिमाण व्रत—

पूर्व पश्चिम आदि दिशाओं में यथाशक्ति क्षेत्र निश्चित करके उसके बाहर जाने का त्याग करना।

७. भोगोपभोग परिमाण व्रत—

भोग—याने एक बार काम में आने वाली वस्तुएं जैसे—भोजन, पानी आदि। उपभोग—याने बार बार काम में आने वाली चीजें जैसे—मकान वस्त्र आदि। इनकी आवश्यकताओं को घटा कर यथाशक्ति त्याग करना।

८. अनर्थ दण्ड विरमण व्रत—

अनर्थ अर्थात् अनावश्यक (दण्ड) हिंसा; जिस हिंसाके बिना किये भी जीवन निभ सकता है वैसी अनावश्यक हिंसा का त्याग करना।

९. सामायिक व्रत—

सामायिक का अर्थ है समता का आचरण। ४८ मिनिट (१ मुहूर्त) के लिए पाप कार्यों का त्याग करके स्वाध्याय, आत्म चिन्तन, ध्यान आदि धार्मिक क्रियाओं में लगना।

१०. देशावकाशिक व्रत—

किसी निश्चित समय तक के लिये त्याग करना, जैसे—नवकारसी, पोरसी आदि इसे 'संवर' भी कहते हैं।

११. पौषधोपवास व्रत—

चौविहार उपवास करके पौषध करना, पौषध का अर्थ है—धार्मिक क्रियाओं से आत्मा को पुष्ठ बनाना। चौविहार उपवास के बिना पौषध के नाम से की जाने वाली धार्मिक क्रिया १० वां व्रत है।

१२. अतिथि संविभाग व्रत—

आत्म साधक अतिथि (मुनि) को अपनी शुद्ध वस्तु सामग्री का विभाग (दान) देना अतिथि संविभाग व्रत है।

बारह व्रतों की पुष्टे के लिये कई दोषों से बचने की आवश्यकता है। जिनकी विशेष जानकारी के लिये श्रावक प्रतिक्रमण देखना चाहिए। जैसे—

१. पशुओं पर अधिक भार नहीं लादना।
२ जाली सिक्के नोट आदि नहीं बनाना।
३. राज्य निषिद्ध वस्तुओं का आयात निर्यात नहीं करना।
४. काम भोग सेवन की तीव्र अभिलाषा नहीं रखना।
५. आवश्यकताओं को कम करना आदि आदि।

प्रश्न ४—श्रावक को किन किन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

उत्तर—१. पाप, अन्याय, व शोषण करने से संकोच व घृणा होनी चाहिए। ×

× नोट—एक बार सम्राट श्रेणिक ने जैन श्रावको के लिए कुछ विशेष सुविधाएं दी। बस फिर क्या था। "श्रावक छाप" आदमियो की बाढ़ सी आ गई। राज्य के सामने बड़ी समस्या खड़ी हो गई। मन्त्री ने हल सोचा—जगल मे दो तम्बू लगाये गये-एक काला और दूसरा सफेद। कह दिया गया कि जो श्रावक हो वे सफेद तम्बू मे चले जाये। बस "श्रावक छाप" लोग भेड़ बकरियो की तरह भर गये, सफेद तम्बू मे। कुछ सच्चे श्रावक भी आये, देखा तो सफेद तम्बू के चौतरफ हरी सब्जी, लीलन, फूलन, छोटे-मोटे कीड़े मकोड़े, किलबिलाट कर रहे थे। 'अरे! हम तो नही जायगें। क्या है गिनती न हो, तो न सही। इस हिंसा से तो

२. व्यर्थ के आडम्बर और प्रदर्शन नहीं करने चाहिये।

३. झूठे, वहम, अन्ध विश्वास, अन्ध रूढ़ियों से दूर रह कर जीवन में सरलता, संयम और सादगी अपनानी चाहिये।

४. मद्य, मांस, जुआ, चोरी, परस्त्री, वेश्या व शिकार इन सात व्यसनों को छोड़ना चाहिये।

५. कटु भाषी, मर्मोद्घातक, व विश्वासघाती नहीं बनना चाहिये।

६. पुत्र परिवार धन आदि की आसक्ति में नहीं फंसना चाहिए।

७. किसी के साथ अशिष्ठ व क्रूर व्यवहार नहीं करना चाहिये।

८. रात्रि भोजन नहीं करना चाहिये। +

+ नोट — रात्रि भोजन निम्न तीन दृष्टियों से भी वर्जनीय सिद्ध होता है—

१. बिजली व चन्द्रमा के प्रकाश की अपेक्षा सूर्य का प्रकाश अधिक आरोग्यप्रद माना जाता है। इसलिए रात की अपेक्षा दिन में खाया हुआ शीघ्र हजम होता है।

२. त्याग धर्म का मूल सन्तोष में है। दिनकी अन्य प्रवृत्तियों

×बच जायेगें।" फिर देखा काले तम्बू की ओर तो बिलकुल शुद्ध साफ जगह, वहां आकर बैठ गये। अभयकुमार मन्त्री और सम्राट देखने आये। मन्त्री ने कहा देखिये—वे जो दस बीस आदमी काले तम्बू मे बैठे है न, वे तो हैं सच्चे श्रावक। और ये हैं सब ढोंगी—इन्हे पाप का भय नही है। सिर्फ श्रावक कहलाना चाहते हैं। इन काले तम्बू वालों को पाप का भय है ये वास्तव मे श्रावक बनना चाहते हैं।

९. जमीकन्द, भांग, गांजा, तम्बाकु आदि वस्तुओं का त्याग करना चाहिये।

१०. अनछाना पानी नहीं पीना चाहिए।

११. चारित्र आत्मा (साधु साध्वी) से खुले मुंह बात नहीं करनी चाहिए।

१२. प्रति दिन नवकार मन्त्र की माला व गुरु दर्शन करने चाहिये।

१३. प्रति दिन कुछ न कुछ धार्मिक स्वाध्याय व आत्म चिन्तन करना चाहिये।

प्रश्न ५—क्या सब श्रावक समान हैं?

उत्तर—नहीं। जैसे—आदमी आदमी में अन्तर,
कोई हीरा, कोई कंकर।

वैसे ही श्रावक, श्रावक में भी बड़ा अन्तर है उनकी कई कोटियां होती हैं। जैसे—श्रावक चार प्रकार के बताये गये हैं—

(१) माता पिता के समान—

साधु के संयम पालन में माता पिता की तरह अत्यन्त वत्सलता पूर्वक निरवद्य सहयोग देने वाले।

+के साथ भोजन की प्रवृत्ति को भी समाप्त करके रात को सन्तोष रखना आवश्यक है।

३. सन्तोष व आरोग्य दोनों दृष्टियों से रात्रि भोजन व दिवस भोजन दोनों में से एक को चुनना हो तो कुशल बुद्धि दिवस भोजन की ओर ही झुकेगी।

२. भाई के समान—

तत्व चर्चा आदि में कभी कटुता आने पर भी भाई की तरह तत्काल पूर्ववत् मधुर बन जाने वाले।

३. मित्र के समान—

मित्र की तरह मधुरता से दोषों का निवारण करके गुणों को प्रकट करने वाले।

४. सौत (शोक) के समान—

प्रति समय साधुओं के दोष देखने वाले तथा उनकी बुराई करने वाले।

चार प्रकार के श्रावक—

१. आदर्श (दर्पण) के समान—

दर्पण की तरह साधुओं के उपदेश को यथार्थ रूप से ग्रहण करने वाले।

२. पताका के समान—

'गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास।'—के साथी

३. स्थाणु (खंभा) के समान—

सच्ची बात सुन कर भी अपने जिद्द पर डटे हुए रह कर खंभों की तरह नहीं झुकने वाले।

४. खर कण्टक (तीखे कांटे) के समान—

कांटा कपड़े आदि में फंस कर उसे फाड़ता भी है और निकालने वाले के हाथ में चुभ कर दर्द भी करता है वैसे ही दुराग्राही

भी होते हैं और समझाने पर कटु वचनों के कांटें भी चुभो देते हैं।

इतिहास को जीवित रखने वाली और भावना को जागृत करने वाली यह घटना प्रधान वर्णमाला हरएक साधक के लिये 'आदर्श पोथी' का काम करेगी; अतः इसका सदैव चिन्तन करना चाहिए।

अ—अर्हं—मैं अर्हं (वीतराग) का उपासक हूँ।

अ—'अमरकुमार'—मैं अमरकुमार की तरह कष्टों में भी परमेष्टि-मंत्र को जपता हुआ अपना कल्याण करूं।

आ—'आषाढ़ मुनि'—मैं आषाढ़ मुनि की तरह गुरु की सीख को हर समय याद रखूं।

इ—'इलायची कुमार'—मैं इलायचीकुमार की तरह भावना बल से आत्मशक्ति को जागृत करूं।

ई—'ईन्द्रभूति(गोतम)'—मैं ईन्द्रभूतिकी तरह सत्यका जिज्ञासु रहूँ।

उ—'उदायन'—मै उदायन की तरह अपने अपराधी को भी क्षमा करना सीखूं।

ऊ - 'ऊर्मि'—मैं ऊर्मियों (लहरों) की तरह चंचल मन को प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की तरह वश में करने का प्रयत्न करूं।

ऋ—'ऋषभदेव'—मैं ऋषभदेव की तरह भूख प्यास के कष्टों को सह कर भी धर्म की ज्योति जगाता रहूँ।

लृ—'लोभ'—मैं लोभ की अग्नि को कपिल की तरह सन्तोष के पानी से शांत करूं।

ए—'एकदिन'—मैं मनुष्य जीवन को एक दिन का राज्य समझ-
कर सदा सजग रहूँ।

ऐ—'ऐवन्तकुमार'—मैं ऐवंतकुमार की तरह गौतम जैसे ज्ञानी
गुरू की अंगुली पकड़ लूं।

ओ—'ओसविन्दु'—मैं ओसविन्दु की तरह चमचमाकर धूल में
मिलने वाली सम्पत्ति पर अभिमान
नहीं करूं।

औ—'औदासिन्य'—मैं भोग सामग्रियों पर भरत की तरह औदा-
सिन्य रहूँ।

अं—'अंजना'—मैं अंजना की तरह हरेक परिस्थिति में अपने
को संभाले रखूं।

अः—'अर्हन्नक'—मैं अर्हन्नक की तरह सत्य पथ पर अडोल रहूँ।

क—'कमलावती—मैं कमलावती की तरह सद् शिक्षा देने में
कभी भी नहीं झिझकूं।

ख—'खन्दक'—मैं खन्दक की तरह चमड़ी छीलने वालों पर भी
रोष नहीं करूं।

ग—'गजसुकुमार'—मैं अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये गजसुकु-
मार की तरह अङ्गारों से भी खेल लूं।

घ—'घमण्ड'—घमण्ड के कारण ही दुर्योधन का पतन हुआ
इसे न भूलूं।

ङ—(म) 'मैतार्य'—मैं मैतार्य के समान स्वयं कष्ट सहकर भी
दूसरे के दुःख का कारण नहीं बनूं।

च—'चन्दनवाला'—मैं चन्दनवाला के समान धैर्यशील बनूं।

छ—'छत्र'—मैं छत्र की तरह स्वयं धूप सहकर भी दुनिया के के लिए छाया करता रहूँ।

ज—'जम्बूकुमार'—मैं जम्बूकुमार की तरह प्राप्त हुई सम्पत्ति को ठुकरा कर सच्चा त्यागी बनूं।

झ—'झूंठ'—मैं झूंठ को जहर के समान समझूं।

ञ—(म) 'मोहजीत'—मैं मोहजीत राजा की तरह हर समय आत्म भाव में रमण करूं।

ट—'टीकाटिप्पणी'—मैं किसी की टीकाटिप्पणी न करूं अपने अवगुणों को ही देखूं।

ठ—'ठगी'—मैं कभी भी ठगी न करूं।

ड—'डर'—मैं 'डर तो पाप का' इस पाठ को हर वक्त याद रखूं।

ढ—'ढंढण'—मैं ढंढण मुनि की तरह सदा दृढ़ प्रतिज्ञ रहूँ।

ण—(न) 'नंदीषेण'—मैं नंदिषेण की तरह सेवा में किसी भी प्रकार की कामना व घृणा न रखूं।

त—'तुलसीगणि'—मैं तुलसीगणि की तरह विरोध को विनोद से जीतूं।

थ—'थावरचापुत्र'—मैं थावरचा पुत्र की तरह अमरता के पथ पर चलूं।

द—'द्रौपदी'—मैं द्रौपदी की तरह पराये दुःख को अपने से तोलूं।

ध—'धन्नजी'—मैं धन्नजी की तरह तर्जना सुनकर तुरन्त प्रबुद्ध हो उठूं।

न—'नमिराजर्षि'—मैं नमिराजर्षि की तरह सदा एकत्व भाव में रमण करूं।

प—'प्रदेशी'—मैं प्रदेशी की तरह युक्ति संगत तत्व को स्वीकार करने हर समय तैयार रहूँ।

फ—'फूट'—मैं फूट को सर्वनाशिनी समझ कर कोसों दूर रहूँ।

ब—'बाहुबलि'—मैं बाहुबलि की तरह मान को हटा कर ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करूं।

भ—'भिक्षुस्वामी'—मैं भिक्षुस्वामी के आदर्शों पर दृढ़ निष्ठा से बढ़ता चलूं।

म—'मणिशेखर'—मैं मणिशेखर की तरह सत्य की अग्नि परीक्षा में खरा उतरूं।

य—'यवराज'—मैं यवराज ऋषि की तरह प्रत्येक वस्तु से ज्ञान लेने का प्रयत्न करूं।

र—'रयणादेवी'—मैं भौतिक प्रलोभनों को रयणादेवी के प्रलोभनों के समान दुःखद समझूं।

ल—'लक्ष्मी'—लक्ष्मी का सच्चा निवास कहाँ है इस पर मनन करूं।

व—'वासुदेव श्रीकृष्ण'—मैं वासुदेव श्रीकृष्ण के जीवन से महानता का पाठ पढ़ूं।

श—'शालिभद्र'—मैं शालिभद्र की तरह आत्म स्वतन्त्रता के लिये धन वैभव को ठुकरा चलूं।

स—'स्थूलिभद्र'—मैं स्थूलिभद्र की तरह काजल की कोठरी में भी बेदाग रहना सीखूं।

स—'सुदर्शन'—मैं सुदर्शन की तरह चरित्र-बल की सर्वोच्चता सिद्ध करके बता दूं।

ह—'हिंसा'—मैं सुदर्शन की तरह हिंसा पर अहिंसा की विजय पताका फहरा दूं।

क्ष—'क्षत्रिय पुत्र'—मैं क्षत्रिय पुत्र की तरह अपने क्रोध को शान्त करके क्षमावीर का आदर्श रखूं।

त्र—'त्रिशलानन्दन'—मैं त्रिशलानन्दन महावीर के पद चिन्हों पर चलता रहूँ।

ज्ञ—'ज्ञान'—मैं ज्ञान और क्रिया के द्वारा आत्मा के समस्त बन्धनों को तोड़ कर मुक्त बनूं।

शुभं——"मैं शुभं शीघ्रम्" के अनुसार शुभ कार्यों में सदा अप्रमत्त रहूँ।

———

अठारहवीं कलिका

धर्म व दर्शन को समझने के लिए अति तर्क भी ठीक नहीं है, और न अति श्रद्धा ही। अति तर्क करने वाला नास्तिक की कोटि मे पहुँच जाता है तो अति श्रद्धा वाला दुराग्रही व मतान्ध कहलाता है। दोनों का समुचित रूप है स्याद्वाद। स्याद्वाद को समझने के लिए निम्न बातों को समझना चाहिए—१ प्रमाता २ प्रमेय, ३ प्रमाण, ४ प्रमिति।

प्रश्न १—प्रमाता किसे कहते हैं ?

उत्तर—चेतना युक्त आत्मा प्रमाता (ज्ञान करनेवाला) है।

प्रश्न २—प्रमेय किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्पाद् व्यय, ध्रौव्य युक्त वस्तु को प्रमेय कहते हैं। आत्मा वस्तु (प्रमेय) को जानता है।

प्रश्न ३—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य किसको कहते हैं।

उत्तर—हर एक वस्तु त्रिगुणात्मक-तीन गुणों वाली होती है। वे तीन गुण ये हैं:—उत्पाद-उत्पत्ति, व्यय-नाश और ध्रौव्य-स्थिरता। उदाहरणार्थ दूधसे दही बनाया तो दही की उत्पत्ति हुई, दूध का नाश हुआ और गोरस स्थिर रहा, अर्थात् गोरस दही में भी है और दूध में भी था। सोने के घड़े को तोड़ कर मुकुट

बनाया तो मुकुट की उत्पत्ति हुई, घड़े का नाश हुआ और सोना स्थिर रहा।

प्रश्न ४—प्रमाण किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के यथार्थ ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। प्रमाण से जानी हुई बात दो तरह से व्यक्त की जा सकती है—१—प्रमाण वाक्य और नय वाक्य।

प्रश्न ५—प्रमाण वाक्य और नय वाक्य किसे कहते हैं?

उत्तर—वस्तु में अनेक धर्म (स्वभाव) होते हैं उन सबका एक साथ प्रतिपादन करना प्रमाण वाक्य है। और एक धर्म का कथन करना नय वाक्य है। जैसे—आम में सुगन्ध, मधुरता, पीलापन, पौष्टिकता, दूसरा आम पैदा करने की शक्ति आदि अनेक स्वभाव हैं। इन सब गुणों को ध्यान में रख कर किसी ने कहा—'आम है' यह हुआ प्रमाण वाक्य। और किसी ने कहा 'आम बहुत मीठा है।' यह हुआ नय वाक्य (इसमें आम के पीलेपन आदि का खण्डन नहीं है, उपेक्षा है) कोई तीसरा कहता है 'आम मीठा ही है'। यह हुआ आग्रह दुर्नय। इस तरह तीन बातें हुई।

१. आम है। प्रमाण
२. आम मीठा है। नय
३. आम मीठा ही है। दुर्नय।

बस स्याद्वाद की यही भूमिका है।

एक वस्तु के अनेक धर्मों को अनेक दृष्टियों से परखना ही अनेकान्त है। इसके सात वचन विकल्प हो सकते हैं, इन्हें सप्त भंगी कहते हैं।

आम कैसा है ? किसी के द्वारा यह पूछने पर सात प्रकार से उत्तर दिया जा सकता है—

१. अच्छा है, स्यादस्ति।

२. अच्छा नहीं है—जैसा रंग है वैसा रस नहीं है—स्याद्नास्ति

३. क्या कहें, कुछ कह नहीं सकते—स्याद् अवक्तव्य।

४. अच्छा है भी, नहीं भी जैसा दीखने में सुन्दर था, वैसा खाने में नहीं—स्यादस्तिनास्ति।

५ ठीक है (रंग की अपेक्षा) फिर भी कह नहीं सकते स्यादस्ति अवक्तव्य।

६. ठीक नहीं है (रस की अपेक्षा) कुछ कह नहीं सकते, स्याद्नास्ति, अवक्तव्य।

७. ठीक है भी, नहीं भी, अरे क्या कहें! कह नहीं सकते, स्यादस्ति, नास्ति, अवक्तव्य।

इन सात भागों में अलग अलग दृष्टकोणों से उत्तर दिये गये हैं और अपनी अपनी दृष्टि से सभी सही हैं। 'ही' यह एकान्तवाद दुर्नय है। 'भी' यह अपेक्षावाद (अनेकान्तवाद) सुनय है।

प्रश्न ६—क्या स्याद्वाद संशयवाद नहीं है?

उत्तर—स्याद्वाद को नहीं समझने वाले उसे संशयवाद कहते हैं। वास्तव में यह जीवन-व्यवहार की चीज है। जैसा कि प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने प्रयोग करते हुए कहा है। "किसी देश की विशालता उसके लिए खुशकिस्मती या बदकिस्मती बन सकती है। जब किसी मुल्क के लोगों के दिल तथा दिमाग बड़े होते हैं वे छोटे-छोटे मामलों तथा झगड़ों में नहीं फंसते तो उस देश की विशालता सौभाग्य बन जाती है। लेकिन जब लोगों के दिमाग

छोटे होते हैं और आपस में लड़ते-झगड़ते तथा कटुता से काम लेते हैं तो मुल्क का बड़ा होना बदकिस्मत है।"[1]

आईन्स्टीन की रिलेटी विटी भी तो स्याद्वाद की तरह अनेक दृष्टियों को ही मानती है।

प्रश्न ७—नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रमाण द्वारा जाने हुए सम्पूर्ण विषय का किसी एक दृष्टि से प्रतिपादन करना नय है।

प्रश्न ८—नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—सात भेद हैं-१ नैगम २. संग्रह ३. व्यवहार ४. ऋजु-सूत्र ५. शब्द ६. समभिरूढ़ ७. एवं भूत !

१. **नैगम नय**—संकल्प मात्र से पदार्थ को जानना नैगम नय है। इसके तीन भेद हैं-भूत, भावी, वर्तमान।

(क) **भूत नय**—भूतकाल में वर्तमान का आरोप करना भूत नैगम नय है जैसे—दीपावली के दिन कहना आज महावीर स्वामी का निर्वाण दिन है।

(ख) **भावी नैगम नय**—भविष्य का वर्तमान में आरोप करना भावी नैगम नय है। उदाहरणार्थ—अरिहन्त भगवान् को सिद्ध कहना।

(ग) **वर्तमान नैगम नय**—वर्तमान का वर्तमान में आरोप करना वर्तमान नैगम नय है। जैसे चूल्हे में अग्नि जलाते समय कहना रोटी पका रहा हूँ।

---

१. दैनिक हिन्दुस्थान—१५ अगस्त १९५८।

२. संग्रह नय--पदार्थों को संग्रहीत रूप से जानने वाला संग्रह नय है. इसके दो भेद हैं—(क) पर संग्रह (ख) अपरसंग्रह ।

(क) पर संग्रह नय--(विशाल) समस्त द्रव्यत्व की अपेक्षा समान है परस्पर अविरोधी है ।

(ख) अपर संग्रह नय – समस्त जीव जीवत्व की अपेक्षा समान है परस्पर अविरोधी है ।

३. व्यवहार नय--संग्रह नय के द्वारा जाने हुए विषय को विधि पूर्वक भेदन करना व्यवहार नय है । यह भी संग्रह नय की तरह २ प्रकार का है—

(क) पर व्यवहार पदार्थ दो तरह के हैं जीव, अजीव ।

(ख) अपर व्यवहार—जीव दो तरह के है संसारी और मुक्त ।

४. ऋजुसूत्र नय--वर्तमान पर्याय (अवस्था) को ग्रहण करने वाला ऋजुसूत्र । उदाहरणार्थ—जीव होते हुए भी वर्तमान मे मनुष्य पर्याय, पशु पर्याय से मनुष्य, व पशु कहना ।

५. शब्द नय--काल, लिंग, उपसर्ग आदि भेद से अर्थ-भेद मानने वाला शब्द नय है । जैसे—राजगृह था (वर्तमान में वैसा नहीं है) । (काल से) कुआ, कुई (लिंग भेद) आहार-विहार (उपसर्ग भेद) इन भेदों से अलग अलग अर्थ ग्रहण किया जाता है ।

६. समभिरूढ़ नय—व्युत्पत्ति-पर्यायवाची शब्द भेद से

अर्थ भेद मानने वाला समभिरूढ़ नय है। 'जैसे—साधु के पर्याय-वाची अनेक शब्द हैं, मुनि, तपोधन आदि। यह नय कहता है जो साधना करे वह साधु, जो मौन रखे वह मुनि, तपस्या ही जिसका धन है वह तपोधन। व्युत्पत्ति से अर्थ भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

७. एवं भूत—शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार उसी क्रिया में संलग्न अर्थ को ही ग्रहण करने वाला एवं भूत नय है। जैसे—जिस समय साधना करता है उसी समय साधु कहला सकता है। जब मौन-युक्त हो तभी मुनि कहला सकता है। जब तपस्या करता हो तभी तपोधन कहला सकता है अन्य समय नहीं। बातचीत, व्यवहार में नय का प्रयोग बहुत होता है अतः उसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये। नय के द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, निश्चय व्यवहार आदि अनेक भेद-प्रभेद होते हैं।

प्रश्न ६—निक्षेप किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु को समझने का तरीका निक्षेप कहलाता है। ये चार हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव। १. नाम निक्षेप—गुण शून्य नाम धरना,—"आंखों का अन्धा नाम नयन सुख।" २. स्थापना निक्षेप—गुण शून्य वस्तु की उसी भाव से स्थापना करना, जैसे—मूर्ति को भगवान् के रूप में स्थापित करना। २. द्रव्य निक्षेप—भूत, भावी अवस्था का कारण अथवा उपयोग शून्यता रखना, जैसे—कोई साधु था अथवा होने वाला है उसे

साधु कहना, अथवा साधुता में उपयोग शून्य हो वह भी द्रव्य साधु है। ४. भाव निक्षेप—तदनुरूप क्रिया सहित होना। जैसे—साधु के गुणों से युक्त होना भाव साधु है।

प्रश्न १०—प्रमिति का क्या अर्थ है?

उत्तर—प्रमिति का अर्थ है अज्ञान का नाश एवं ज्ञान का प्रकाश होना।

इन चारों का क्रम इस प्रकार है—आत्मा पदार्थ को प्रमाण से जानता है। और जानने पर अज्ञान हटकर ज्ञान का प्रकाश हो जाता है।

उन्नीसवीं कलिका
(इतिहास का पूर्व खण्ड)

इतिहास प्रत्येक राष्ट्र, देश जाति व धर्म का जीवन होता है। इतिहास वह जलती हुई ज्योति है जिसके प्रकाश में वर्तमान को देखा जा सकता है। एवं भविष्य के लिए सोचा जा सकता है। हरएक व्यक्ति को अपने इतिहास का ज्ञान होना चाहिए। इस दृष्टि से जैन धर्म व तेरा पंथ का संक्षिप्त इतिहास दिया जाता है।

प्रश्न १– जैन धर्म कब से चला ?

उत्तर—जैन धर्म मनुष्य जाति की आदि नहीं मानता, इसलिए वह धर्म की भी आदि नहीं मान सकता, जब मनुष्य था, तब धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, उसके सामने मौजूद थे। इसलिए धर्म शाश्वत है। यह सिद्धान्त अपने आप स्थिर हो जाता है। इस युग की आदि में धर्म का सर्व प्रथम उपदेश देने वाले भगवान् ऋषभदेव हुए।

प्रश्न २—भगवान् ऋषभदेव कौन थे

उत्तर—युगालिक परम्परा के अन्तिम राजा (कुलकर) नाभिराजा और मरु देवी के पु त्र थे। इनकी राजधानी अयोध्या थी। ऋषभदेव के भरत, बाहुबली आदि १०० पुत्र थे। ब्राह्मी सुन्दरी ये दो पुत्रियां थीं, ऋषभदेव ने ब्राह्मी को लिपि अर्थात् अक्षर ज्ञान, व्याकरण, न्याय, छन्द, काव्य आदि ६४ कला की, और सुन्दरी को गणित की शिक्षा देकर मानव समाज में शिक्षा का आरम्भ किया। कला उद्योग–नीति और व्यवस्था की शिक्षा की

आदि करने के कारण ही उन्हें आदिनाथ के नाम से पुकारा जाता है।

अन्त में भरत (भरत क्षेत्र के पहले चक्रवर्ती) को राज्य सौप कर स्वयं दिक्षित हुए। और श्रमण परम्परा की नींव डाली। एक हजार वर्ष तपस्या करने के बाद सर्वज्ञ बने। फिर दुनियां को उपदेश देते हुए कैलाश पर्वत पर मुक्त हुए (निर्वाण पधारे)।

भगवान् ऋषभदेव का वर्णन विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, भागवत पुराण, ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रंथो में भी आता है। भागवत् में ऋषभ अवतार के नाम से उनका चित्रण है, वर्णन करने में कुछ सम्प्रदायवाद की गन्ध जरूर है।

प्रश्न ३—ऋषभदेव के बाद कौन हुए?

उत्तर—उनके बाद २३ तीर्थंकर और हुए। जो एक दूसरे के कुछ अन्तर पर हुए। उनके नाम ये हैं।

२. अजितनाथ प्रभु। ३. सम्भवनाथ प्रभु।

४. अभिनन्दन प्रभु। ५. सुमति प्रभु।

६. अद्म प्रभु। ७. सुपार्श्व प्रभु। ८. चन्द्र प्रभु।

९. सुविधि प्रभु (पुष्प दन्त)। १०. शीतल प्रभु।

११. श्रेयान्स प्रभु। १२. वासुपूज्य प्रभु। १३. विमल प्रभु।

१४. अनन्त प्रभु। १५. धर्म प्रभु। १६. शान्ति प्रभु।

१७. कुन्थु प्रभु। १८. अर प्रभु। १९. मल्लि प्रभु।

२०. मुनि सुव्रत प्रभु। २१. नाभि प्रभु।

२२. अरिष्ट नेमि प्रभु। २३. पार्श्व प्रभु।
२४. महावीर स्वामी।

ये २४ तीर्थंकर हो गए हैं। जिनमें २२, २३, २४ का इतिहास अधिक निकट और सुप्राप्य है। इसलिए इनका संक्षिप्त परिचय यह है।

प्रश्न ४—नेमिनाथ कौन थे?

उत्तर—आपका दूसरा नाम अरिष्टनेमि है। आपकी जन्मभूमि आगरा के पास शौरीपुर नगरी थी। पिता यदुवंशियों के राजा समुद्रविजय और माता का नाम शिवा देवी था। कर्मवीर श्रीकृष्ण जी के (ज्येष्ठ पिता के पुत्र) भाई थे। आपका सम्बन्ध राजीमति (उग्रसेन राजा की पुत्री) से होना था। किन्तु विवाह के अवसर पर बरातियों के लिए पशु वध होता देख कर आपका हृदय पिघल गया। तत्क्षण विवाह मण्डप से लौट गए। साधु-व्रत धारण करके बावीसवे तीर्थंकर बने।

प्रश्न ५—फिर राजीमति का क्या हुआ?

उत्तर—राजीमति जी ने भी आपके पीछे संसार के ऐशो आराम को छोड़कर साध्वी व्रत ले लिया और सच्चे प्रेम का आदर्श रखा।

प्रश्न ६—पार्श्वनाथ कौन थे?

उत्तर—भगवान् पार्श्वनाथ जैन धर्म के तेवीसवे तीर्थंकर थे। और बनारस (वाराणसी) के राजा अश्वसेल और माता वामा देवी

के पुत्र थे। आप स्वभाव से अत्यन्त कोमल परन्तु क्रान्तिकारी थे। आपका युग तापसों का युग था। आपने कमठ तापस की धूनी मे जलते हुए नाग नागिनी को नवकार मन्त्र सुनाया नाग युगल धरणेन्द्र पद्मावती के रूप में पैदा होकर आपके उपासक बने। जैन तीर्थंकरों मे आपकी उपासना सबसे अधिक प्रचलित है। आपने जो क्रान्ति की उसका कुछ वर्णन "धर्मानन्द कौशाम्बी" के शब्दों मे यूं है।

"श्री पार्श्व मुनि ने सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन तीन नियमों के साथ अहिंसा का मेल बिठाया।"

आपके शासन तक चतुर्याम धर्म था याने सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और अहिंसा (ब्रह्मचर्य अपरिग्रह में ही सम्मिलित था)। साधुओं के वस्त्र भी हर किसी रंग के हो सकते थे। दूसरे तीर्थंकर से २३ वे तीर्थंकर तक यही परम्परा चलती है।

प्रश्न ७—भगवान् महावीर कौन थे ?

उत्तर—भगवान् महावीर जैन धर्मके २४ वे तीर्थंकर थे। आपका जन्म २५५७ वर्ष पूर्व याने ५९९ ई. पूर्व[1] (६०० ई. पूर्व) कुण्डनपुरके राजघराने में हुआ था। आपके पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला देवी थी। आपके एक बडे भाई थे जिनका नाम नन्दीवर्धन था। यशोदा के साथ विवाह हुआ। यशोदा की कोख से एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम था प्रियदर्शना। महावीर अपने समय

नोट—१ ईस्वी सन् मे ५७ जोडने से विक्रम सवत्, तथा ७८ घटाने से शक सम्वत् बन जाता है।

के एक प्रतिभाशाली, तेजस्वी, एवं सुशील राजकुमार गिने जाते थे। ३० वर्ष की भरी जवानी में संसार के भोग-विलासों को छोड़ कर प्रव्रजित हो गए। १२ वर्ष ६½ महीने तक अनेक प्रकार की तपस्या, ध्यान आदि के द्वारा आत्मा को विशुद्ध बनाते हुए ई० ५५८ (लगभग) केवल ज्ञान प्राप्त करके तीर्थंकर के रूप में प्रकट हुए। बहुत से 'राजा, रंक, साधु, सन्यासी, अमीर, गरीब, मूर्ख, पण्डित, स्त्री पुरुषोंने' 'सर्व जन हिताय, सर्व जन सुखाय' का अमर सन्देश सुनकर सत्पथ स्वीकार किया। ७२ वर्ष की उम्र में पावापुरी में कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन सर्व बन्धनों से मुक्त होकर सिद्ध बुद्ध मुक्त बने। भगवान् के निर्वाण दिन की याद में दीपमालिका मनाई जाती है।

प्रश्न ८—महावीर की मुख्य शिक्षायें क्या थीं ?

उत्तर—भगवान् की शिक्षायें महासागर की तरह अनन्त एवं अगम्य है। किन्तु संक्षेप में यूं समझी जा सकती है।

आचार—

१. प्राणी मात्र को मित्र समझो।

२. धर्म के लिए हिंसा करना पाप है।

३. धर्म में जाति पांति का कोई भेद नहीं है।

४. अशुद्ध भावों से कर्म बंधते हैं।

५. शुद्ध भावों से कर्म टूटते हैं।

६. मन और इन्द्रियों को जीतना ही सच्ची विजय है।

७. जितना ममत्व है, उतना ही बन्धन !
८. विवेकपूर्वक किया गया सत्कार्य ही धर्म है।
९. ज्ञान और क्रिया से मुक्ति मिलती है।

—विचार—

१. जगत का कोई आदि नहीं, अनादि है।
२. ईश्वर कर्ता-हर्ता नहीं, सिर्फ ज्ञाता है।
३. आत्मा ही कर्म करता है।
४. आत्मा ही कर्म भोगता है।
५. आत्मा ही कर्म तोड़ कर मुक्त होता है।
६. सत्य के लिये दुराग्रही मत बनो।
७. प्रत्येक सत्य को स्याद्वाद-अनेक दृष्टिकोणों से देखो।
८. कर्म ही संसार है।
९. कर्म का सम्पूर्ण नाश ही मुक्ति है।

इनको भी संक्षेप में करना चाहें तो इस प्रकार त्रिपदी में कह सकते हैं।

(१) अहिंसा (२) अपरिग्रह (३) अनेकान्त। और इससे भी आगे चलें तो इन दो सूत्रों में समझ सकते हैं:—

+ आश्रव बन्ध का कारण है।
संवर मुक्ति का कारण है।

प्रश्न ९—तीर्थङ्कर का क्या अर्थ है ?

उत्तर—तीर्थ नाम है धर्म (प्रवचन) का। धर्म संसार सागर

+ नोट—आश्रवो भव हेतुः स्यात् संवरो मोक्ष कारणम्।
इतीय मार्हती दृष्टि' सर्वमन्यद् प्रपंचनम्॥
—आचार्य हेमचन्द्र।

से पार उतरने के लिए तीर्थ के समान है। उस धर्म का उपदेश करने वाले तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थ नाम संघ का भी है। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, इस चतुर्विध संघ की स्थापना करने से भी इन्हें तीर्थङ्कर कहते हैं?

प्रश्न १०—भगवान महावीर का संघ कितना बड़ा था?

उत्तर—भगवान महावीर के संघ में गोतम स्वामी प्रमुख और ११ गणधर थे। जिनके ६ गण (समूह) में १४ हजार साधु थे। ३६ हजार साध्वियां थी। जिनमें चन्दनबाला प्रमुख थी। आनन्द श्रावक आदि १ लाख ५६ हजार श्रावक और सुलसा व रेवती प्रमुख ३,१८,००० श्राविकाये थी। कुल ५० हजार साधु-साध्वी थे, और ४,७७,००० श्रावक श्राविकाये थीं।

प्रश्न ११—जैन धर्म को अन्य धर्मों की शाखा बताई जाती है सो सत्य है क्या?

उत्तर—नहीं! वह सत्य नहीं है। इतिहास के प्रकाश में यह सूर्य की तरह स्पष्ट हो चुका है कि जैन धर्म एक स्वतन्त्र धर्म है। जौर उसके आदि प्रवर्तक ऋषभदेव हुए हैं। कुछ एक विद्वानों के इन उद्धृत विचारों से यह अच्छी तरह से समझ में आजायेगा—

विनोबा भावे लिखते हैं कि—

"महावीर स्वामी तो जैनों के आखिरी याने २४ वें तीर्थङ्कर माने जाते हैं। उनसे हजारों साल पहले जैन विचार का जन्म हुआ था। ऋगवेद में भगवान् की प्रार्थना में एक जगह कहा हैं:—
"अर्हन् ईदं दयसे विश्वम् अभवम्"

हे अर्हम्! तुम किस दुनिया पर दया करते हो""यहां पर आये हुए अर्हम और दया जैनों के ही प्यारे शब्द हैं।

(२) भारत के उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने The Indian Philosophy.—नामक अपनी पुस्तक में लिखा है। "जैन पुराणों में ऋषभदेव को धर्म का संस्थापक कहा है। इस बात के प्रमाण मिले हैं कि ईस्वी सन् से १०० वर्ष पूर्व तक ऋषभदेव जी की पूजा करते थे, जो पहले जैन तीर्थङ्कर थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन धर्म श्री वर्धमान और श्री पार्श्वनाथ से भी पहले फैला हुआ था। यजुर्वेद में ऋषभ देव अजित व अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थङ्करों के नाम प्रसिद्ध हैं। "भागवत् पुराण" भी कहता है कि श्री ऋषभ ने जैन धर्म को स्थापित किया।

(३) लोकमान्य तिलक ने स्पष्टतया कहा है 'अहिंसा परमो धर्मः' इस सिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है। परन्तु इस घोर हिंसा का (यज्ञादिक में होने वाला) ब्राह्मण धर्म से विदाई दिलाने का श्रेय जैन धर्म के हिस्से में है।

मुंबई समाचार १०–१२–१६०४.

इससे स्पष्ट है कि जैन धर्म वैदिक धर्म की शाखा कभी नहीं हो सकती और न बौद्ध धर्म की ही शाखा है। जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान डा० हरमन जैकोबी कहते हैं—

"आश्रव संवर सदृश शब्दों का जैन साहित्य में मूल अर्थ में प्रयोग हुआ है और बौद्ध साहित्य में अन्य अर्थों में। अतः मूल अर्थ का प्रयोग करने वाला जैन धर्म बौद्ध धर्म की (अपेक्षा) विशेष प्राचीन है। बौद्धों ने जैनों को स्थान स्थान पर अपना स्पर्धी माना है, किन्तु कहीं भी जैन धर्म को बौद्ध धर्म की शाखा या नवस्थापित धर्म नहीं कहा है।" वास्तव में धर्म की महत्ता

प्राचीनता व नवीनता से नहीं है, बल्कि उसकी विशुद्धता एवं तेजस्विता पर है; हां! प्राचीनता उसकी तेजस्विता पर चार चॉद जरूर लगा देती है।

प्रश्न १२—भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य कौन थे?

उत्तर—भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य का नाम इन्द्रभूति था जो जाति के गौतम (ब्राह्मण) थे व अपने समय के प्रमुख विद्वान् थे। महावीर स्वामी के सामने उनसे वाद विवाद करने आये किन्तु उनके अनन्त ज्ञान के सामने नतमस्तक होकर अपने पॉच सौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये। भगवान् से तत्व के बारे में "कि तत्वम्?" पूछने पर "उप्पनेइवा-विगमेइवा, धुवेइवा" इस त्रिपदी का उपदेश दिया, जिस पर उन्होंने द्वादशांगी की रचना की। ये प्रथम गणधर हुए, जो गौतम स्वामी के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। गौतम (बुद्ध) और गौतम स्वामी दो थे। नाम साम्य से कोई एक न समझ ले।

प्रश्न १३—भगवान् महावीर के बाद कौन हुआ?

उत्तर—भगवान् महावीर के बाद उनके संघ के आचार्य सुधर्मा स्वामी (पाँचवें गणधर) हुए। क्योंकि गौतम स्वामी को अमावश्या की पश्चिम रात्रि में केवल ज्ञान हो गया था, और केवल ज्ञानी के पट्टधर (उत्तराधिकारी) केवल ज्ञानी नही हो सकते। इसलिए सुधर्मा स्वामी को पाट दिया गया और वर्तमान में आगम की वाचना सुधर्मा स्वामी की ही प्रसिद्ध है।

प्रश्न १४—आगम क्या है और कैसे बने?

उत्तर—भगवान् के उपदेश बिखरे हुए फूलों की तरह होते

थे । उनके प्रमुख शिष्यो (गणधरो) ने अलग अलग तरीकों से उपदेशों को संकलित करके एक व्यवस्थित रूप दिया ('अत्थं भासई अरहा, सुत्तंगुंथई गणहरा निउणा') जिसे आगम कहते हैं । इन आगमों को द्वादशांगी या गणि-पिटक कहते हैं । आज द्वादशांगी को ही प्रमाण माना जाता है ।

प्रश्न १५—सुधर्मा स्वामी के पट्टधर कौन थे ?

उत्तर—जम्बू स्वामी थे । ये अपने सम्पन्न माता पिता के इकलौते पुत्र थे और सुधर्मा स्वामी का उपदेश सुन कर संसार से विरक्त हो गए । किन्तु माता की मोह भरी मनुहार के कारण आठ शादियां करनी पड़ी, किन्तु स्त्रियों का मोहक हास-विलास एवं ६६ करोड़ का आया हुआ दहेज इन्हें संसार में फंसाने को समर्थ नहीं हुआ । एक ही रात में आठों स्त्रियों को समझा कर उनके व अपने परिवार व प्रभवकुमार आदि ५२७ व्यक्तियों सहित सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षित हुए । इनका उत्तम वैराग जैन इतिहास में आज भी रोशन है । ये अन्तिम केवलज्ञानी हुए, इनके मोक्ष जाने के बाद १० बातें विच्छेद (लुप्त) हो गईं ।

(१) मन पर्यव ज्ञान, (२) परम अवधि ज्ञान, (३) पुलाक लब्धि, (४) आहारक शरीर (५) उपशम श्रेणी, (६) क्षपक श्रेणी, (७) जिन कल्प, (८) परिहार विशुद्ध चारित्र, (९) सूक्ष्म संपराय चारित्र, (१०) यथाख्यात चारित्र ।

प्रश्न १६—जम्बू स्वामी के बाद कितना ज्ञान रहा ?

उत्तर—जम्बू स्वामी के बाद प्रभव स्वामी, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूति विजय, भद्रबाहु, और स्थूली भद्र ये ६ श्रुत केवली अर्थात १४ पूर्वधर हुए । इनमे स्थूलीभद्र का इतिहास बड़ा रोमां-

चक है। ये जिस कोशा वेश्या की चित्रशाला में १२ वर्ष तक राग-रंग में मदहोश रहे ; साधु बन कर उसी वेश्या की चित्रशाला में चतुर्मास करके उसे प्रबोध देकर श्राविका बनाई। सचमुच में ऐसी काजल की कोठरी में बेदाग रहने के आश्चर्यकारी उदाहरण दुनियां के इतिहास में विरले ही मिलेंगे।

भगवान् महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष तक उनके बड़े भाई नन्दीवर्धन का संवत् चलता रहा। ४७० वर्ष बाद राजा विक्रमादित्य ने अपने नाम के पीछे 'वीर' नाम जोड़ कर अपना 'वीर विक्रम संवत्' चलाया। जो आज भी चल रहा है। आगे का इतिहास वीर विक्रम संवत् से बताया जायेगा।

प्रश्न १७—मध्ययुगीन इतिहास क्या है ?

उत्तर—श्रुत केवली (स्थूली भद्र) से भिक्षु स्वामी तक का जैन इतिहास बड़ा ही उतार चढ़ाव पूर्ण रहा। धर्मों के संघर्ष का यह समय बड़ा ही रोमांचक व दिलचस्प है। कहीं सम्राट् चन्द्रगुप्त, अमोघवर्ष, खारवेल, और कुमारपाल जैसे परमर्हतों ने जैन धर्म के प्रचार के लिए तन मन धन लगा दिया। तो कहीं अशोक महान् ने बौद्ध धर्म का झण्डा विदेशों तक में फहराना चाहा। तो कहीं वेदानुयायी राजाओं ने अपने धर्म प्रचार में बाधक बनने वाले जैन और बौद्धों को मौत के घाट उतारना शुरू किया। इस काल में धर्माचार्यों में बड़े बड़े संघर्ष हुए। 'ब्राह्मण श्रमणम्' जैसे जन्मना विरोध दिखाने वाले सूत्र बने ! जैनाचार्यों ने जैन धर्म (समाज साहित्य के नाम पर) होने वाले अत्याचारों एवं आक्षेपों का डट कर मुकाबला किया। जैन न्याय, व्याकरण, काव्य, साहित्य के निर्माण में बौद्ध व वैदिकों को बराबर का उत्तर दिया। जैन धर्म की रक्षा व वृद्धि के लिये जी जान से जुट पड़े। उनका इतिहास बड़ा लम्बा चौड़ा है। संक्षेप में इतना ही

बताना है कि यह युग संघर्ष, मतभेद, और साहित्य निर्माण का युग था।

कुछ विशेष घटनाएं तथा मुख्य २ प्रभावक जैनाचार्यों व उनकी कृतियों की एक छोटी सी सूची यहां दी जाती है:—

विक्रम शताब्दी—	आचार्य	रचना
११४		१० पूर्व विच्छेद हुए
२ शताब्दी—	पुष्पदंत भूत बलि	षट् खंडागम
२ शताब्दी—	कुंदाकुंदाचार्य (दिगम्बर)	समयासार आदि २ रचनाएं प्रसिद्ध हैं।
३ शताब्दी—	उमास्वाति	तत्वार्थ सूत्र के कर्ता।
४ ,,	प्रथम द्वितीय आगमन, वाचना	मथुरा में आर्य स्कंदिल के नेतृत्व में माथुरी वाचना, वल्लभी में नागार्जुन, के नेतृत्व में वल्लभी वाचना।
५ ,,	(१) वृद्धवादी (२) सिद्धसेन-दिवाकर प्रौढ़ दार्शनिक।	सम्मति तर्क कल्याण मंदिर आदि के कर्ता।
६ ,,	देवर्धिगणि, क्षमा श्रमण	वल्लभी में पुनः तीसरी आगम वाचना (आगमों को लिपी बद्ध किया)
७ ,,	जिनदास, क्षमा श्रमण (सैद्धान्तिक)	विशेषावश्यक भाष्य आदि बनाये।
८ ,,	समंत भद्र + (दिगम्बर महान् दार्शनिक)	आप्त मीमांसा आदि के कर्ता।

+ नोटः—कई इनका दूसरी शताब्दी मे होना भी मानते है!

८	,, हरिभद्र (प्रौढ़ विद्वान्)	१४४४ प्रकरण बनाए।
८	,, अकलंक (दिगम्बर)	जैन न्याय को व्यवस्थित बनाया।
९	,, जिनसेन (दिगम्बर)	आदि पुराण।
९	,, वीरसेन (दिगम्बर)	धवला टीका ६० हजार श्लोक।
१०	,, शीलंकाचार्य	आगम टीकाकार।
११	,, अभयदेव (प्रथम)	समिति तर्क की २५ हजार टीका
१२	,, अभयदेव (द्वितीय)	नवांगी टीकाकार।
१२	,, वादिदेव	प्रमाण मय तत्वालोकालंकार टीका ८४ हजार (स्याद्वादरत्नाकर)
१२	,, हेमचन्द्राचार्य	साढ़े ३ करोड़ श्लोक बनाए।
१३	,, मलयगिरी	स्याद्वाद मंजरी, पन्नवणारीका आदि अनेक टीकायें।
*१५३५	लोंकाशाह	दो बातें नई मूर्ति-पूजा का खंडन और ३१ आगम माने।
१६०८	जीवराज मुनि	३२ आगम माने।
१६९२	धर्मसिंह मुनि	२७ सूत्रों पर टव्वा (भाषामें) बनाया
१७१६	धर्मदास मुनि	१७७२ में ९९ शिष्यों में से २२ शिष्यों को आचार्य बनाये तब से २२ टोला कहलाये। उन्हीं को स्थानक वासी भी कहते हैं।

* नोट—श्वेताम्बर स्थानकवासी कान्फ्रेंस के स्वर्णजयंती इतिहास से।

धर्मदास जी मुनि की शिष्य परम्परा यूं हैं:—

१८ वीं शताब्दी तक के इतिहास को उड़ती नजर से देखने पर तीन बातें सामने आती हैं; समय समय पर दुर्भिक्ष आदि कारणों से साधु संघ की छिन्न भिन्नता, अन्य सम्प्रदायों को संघर्ष के उत्तर के लिए विद्या प्रभाव, सिद्धान्त भेद के कारण सम्प्रदायों के अन्तर्भेद। इन कारणों से १६ वीं शताब्दी तक में जैन शासन के इतने मुख्य सम्प्रदाय वन गये।

बीसवीं कलिका

(इतिहास का उत्तरखण्ड)

अब तक के इतिहास में अनेक विद्वान् हुए, चमत्कारिक हुए, आचार्य हुए लेकिन सब एक निश्चित घेरे के भीतर ही भीतर घूमते रहे। ऐसा विराट् व्यक्तित्व प्रकाश में नहीं आया जो जर्जरित मस्तिष्क को नई खुराक देता, छिन्न-भिन्न हुई साधु-शृङ्खला को वैज्ञानिक व्यवस्था देता। १८वीं सदी के अन्त में एक ऐसे ही तेजस्वी पुरुष जन्म लेते हैं. वे महापुरुष और कोई नहीं भिक्षु स्वामी ही थे। उनका जन्म विक्रम सं० १७८३ में कंटालिया (जोधपुर) में हुआ। पिता का नाम बल्लूशाह (सकलेचा) और माता का नाम दीपांजी था। भर यौवन में संसार को छोड़ स्थानक वासी आचार्य श्री रघुनाथजी के पास दीक्षित हुए, गम्भीर अध्ययन और अनुभव के बाद सिर्फ दो बातें हाथ लगी–आशा में निराशा और साधना में धोखा। जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों में वहां काफी गड़बड़झाला था। आचार की शिथिलता वहां घर कर गई थी साधु-संघ की अवस्था बड़ी ही दयनीय हो रही थी। राजनगर के श्रावकों ने साधुओं की आगम विरोधी हरकतों का विरोध किया, भिक्षु स्वामी को गुरु आज्ञा से उनको समझाने के लिए जाना पड़ा लेकिन वे सत्य का गला नहीं घोट सके। गुरुजी से साफ-साफ बात कह दी, दो वर्ष तक लगातार चर्चा होने के बाद, गुरुजी के टस से मस न होने पर गुरु परम्परा को छोड़कर, भिक्षु स्वामी आत्म-साधना के लिए अलग हो गये। उनके साथ अन्य १२ साधु भी चले आये।

प्रश्न १—भिक्षु स्वामी के अलग होने के क्या कारण थे ?

उत्तर—विक्रम सं० १८०८ से १८१७ तक के काल में स्वामीजी ने रघुनाथजी के पास रहकर जो साधु-जीवन-विरोधी बातें पाईं उनमें मुख्य तीन विषय थे:—

१. सिद्धान्त २. आचार ३. संघ-व्यवस्था।

१. सिद्धान्त—धर्म को वहां सट्टा बना दिया गया था। लड्डू खिलाकर उपवास करा देना भी धर्म था, पैसे देकर हर प्रकार की धर्म-क्रिया करवा लेना भी धर्म था। सच तो यह है कि धर्म पैसों में बिकता था। भिक्षु स्वामी ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा—धर्म तो साधना के द्वारा ही किया जा सकता है; धर्म अमूल्य है पैसों से नहीं खरीदा जा सकता[1]।

२. आचार—साधु-समाज एक घर छोड़कर अनेक घरों का मालिक बन बैठा था। गांव-गांव में मकानात बन गये, आलमारियों में पुस्तकों व कपड़ों के ढेर लगे रहते थे। निर्ग्रंथ होकर भी बड़ी-बड़ी ग्रंथियां (सम्पत्ति) रखने लग गये। भिक्षु स्वामी ने इसका

---

१. प्रथम तो धर्म वीर आज्ञा में बतायो जब,
बिना ही विवाद आज्ञा बारे पाप रहग्यो।
धर्म अमोल मोल आवतना एक रत्ति,
बो भी उपदेश में, न जोर जुल्म चहग्यो।
भोग में, न धर्म, धर्म त्याग में दिखायो तंत,
किया निरवद्य अनुकम्पा धर्म लह ग्यो।
आख मीच अधारो जो करे तो खुशी है वीकी,
भीखन तो सारी बाता साफ साफ कहग्यो ॥१॥

खुला विरोध किया। उन्होंने कहा साधु तो अप्रतिबन्ध बिहारी होता है। एक इंच जमीन व सूत का धागा भी उसके नाम पर कहीं जमा नही होना चाहिए।

३. संघ-व्यवस्था---साधु समाज में कोई भी अंकुश नहीं था। शिष्यों के मोह में अर्थ अनर्थ की चक्की चलती थी। कोई कुछ करे, उसका प्रायश्चित्त करे या न करे, इस पर कोई एक आचार्य का अनुशासन नहीं होने से साधु-समाज एक उच्छृङ्खलता का घर बन गया था। अकेला साधु व अकेली साध्वी मन चाहे जैसे फिर सकते थे। स्वामी जी ने इसका विरोध भी किया और साधु समाज को एक अनुशासन में बांधा। यह नग्न सत्य लोगों के गले नहीं उतरा। अतः स्वामीजी के सामने विरोध, वहिष्कार व चर्चाओं के तूफान उठे। उन्हें गावों से निकाल दिया गया, आहार पानी देने वालों को सामायिकों का दण्ड दिया गया, मुंह देखने वाले को नारकी बताई गई आदि आदि। लेकिन उन्होंने हिमालय की तरह डट कर मुकाबला किया और विजय पाई। इस सारी आप बीती कहानी को स्वामीजी के शब्दों में सुनिये, जो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य हेमराजजी स्वामी से कहीः—

"म्हें उणां ने छोड़ी नीसरया जद पाँच वर्ष तो पूरो आहार न मिल्यो, आहार पाणी जॉच कर उजाड़मांये सर्व साध परा जाता, रूंखरी छाया आहार पाणी मेलता अने आतापना लेता, आथण रा पाछा गाँव आवता, इणरीते कष्ट भोगवता, कर्म काटता, म्हें या न जाणता सो म्हारो मार्ग जमसी, न यूं दीक्षा हुसी न यूं श्रावक श्राविका हुसी, म्हें तो जाण्यो आत्म कारज सारस्या, मर पूरा देस्या, इम जाण तपस्या करता।"

भिक्षु स्वामी की विशेषताएं—

१. सिद्धान्तों के सामने उन्हें किसी का भी मोह नहीं था। शुरू शुरू मे जब कुछ ही साध्वियाँ उनके संघ में थी तब ५ साध्वियों को इसलिए संघ से बाहर निकाल दिया कि उन्होंने वस्त्र की मर्यादा का उल्लंघन किया था।

२. अपने आप के प्रति सच्चे थे, पादु (गॉव) के बाजार में जा रहे थे कि किसी ने कहा—आपके शिष्य की चद्दर मर्यादा से बड़ी है। आपने शिष्य (हेमराज जी स्वामी) की चद्दर वहीं उतार कर नापी और मर्यादा से कुछ छोटी ही निकलने पर लोगों को मालूम हुआ कि वे अपने व्रतों में कितने प्रामाणिक व दृढ़ निष्ठ हैं।

३. सच्ची बात कहने में उन्हें कभी भी किसी का भय नहीं हुआ; जो कुछ भी उन्होंने सोचा समझा खुले आम स्पष्ट शब्दों में डंके की चोट में कहा।

प्रश्न २—तेरापंथ का विधान क्या है ?

उत्तर—आज से दो सौ वर्ष पूर्व बना; तेरापंथ का विधान एक पौन पन्ने में लिखा हुआ है। संसार का सबसे छोटा विधान इङ्गलैण्ड का माना जाता है और समझदार लोगों के लिए विधान का छोटा होना एक प्रतिष्ठा का चिन्ह है। इस दृष्टि से तेरापंथ का विधान बड़ा ही महत्वपूर्ण है और उसकी कुछ धाराएं ये हैं:—

१. सब साधु—साध्वी एक ही आचार्य की आज्ञा में चले।

२. वर्त्तमान आचार्य ही भावी आचार्य का चुनाव कर दे।

३. कोई साधु अपना अलग शिष्य न बनाए।
४. दीक्षा देने का अधिकार एक मात्र आचार्य को ही है।
५. आचार निष्ठ व्यक्तियों से ही साधुओं का सम्बन्ध रहे।

प्रश्न ३—तेरापंथ नाम कैसे पड़ा ?

उत्तर—जोधपुर की बात है किसी दुकान में श्रावक पौषध कर रहे थे। वहाँ के दीवान श्री फतेहसिंहजी सिंघी उधर से गुजरे और श्रावकों को स्थानक छोड़कर दुकान में पौषध करने का कारण पूछा। श्रावकों ने भिक्षु स्वामी की स्थानक त्याग आदि की बातें सुनाई। वहाँ खड़े एक सेवक ने जब यह सुना कि वे १३ ही साधु व १३ ही श्रावक हैं तो उसने एक दोहा बोला—

आप आपरो गिलो करे, आप आपरो मन्त।
सुणज्यो रे शहर रा लोगां, ऐ तेरापंथी तन्त॥

बस समय का तीर लग गया—तभी से तेरापंथी नाम प्रसिद्ध हो गया। भिक्षुस्वामी ने जब यह सुना तो इसका बड़ा ही लाक्ष-णिक अर्थ किया—"हे प्रभु तेरा ही पंथ है मैं तो तेरे बतलाए हुए पथ का पथिक हूँ [1]।"

दूसरा अर्थ उन्होंने यह भी लगाया कि पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति ऐसे शास्त्रोक्त तेरह नियमों को पूर्ण रूप से पालन करेगा वह तेरापंथी साधु होगा।

भिक्षु स्वामी ने अपने जीवन काल में लगभग ३८,००० पद्य रचना की जो तत्व, कथा, इतिहास आदि दृष्टियों से बड़ी महत्व

---

[1] "हे प्रभो यह तेरापंथ मानव मानव का यह पंथ।"

की है। यों दुनियां को एक नई देन देकर, सात पहर का संथारा करके स्वामी जी ७७ वर्ष की उम्र में स्वर्ग पधारे।

प्रश्न ४—भारीमालजी स्वामी कौन थे ?

उत्तर—स्वामी जी के मुख्य शिष्य थे। इनकी दीक्षा स्वामी जी के हाथ से सं० १८१३ बागोर में हुई थी। उनके पिता भी साधु थे, जब स्वामी जी अलग हुए तब १३ वर्ष की उम्र में इन्होंने पिता का मोह छोड़ कर आत्म साधना के लिए स्वामी जी का साथ दिया। जीवन में जागरूकता उनकी विचित्र थी। किसी के द्वारा सच्ची या झूठी गल्ती की शिकायत होने पर स्वामी जी ने तेला करने का आदेश दिया था किन्तु जीवन भर में एक तेला करना पड़ा और वह भी झूठी शिकायत करने पर। आप द्वितीय आचार्य हुए। ७५ वर्ष की उम्र में १८७८ में माह वदी ८ को राज-नगर में देवलोक हुए।

प्रश्न ५—भारीमालजी स्वामी के उत्तराधिकारी कौन थे ?

उत्तर—रायचन्द जी स्वामी थे। इनका जन्म वड़ी रावलिया में (१८४७) में हुआ था।

आप बड़े फक्कड़ थे। आपके समय में साधु-साध्वी, साहित्य, प्रचार-क्षेत्र आदि में बहुत वृद्धि व उन्नति हुई। आपने थली में सादगी, सत्य और संगठन की विशेषता सुनकर सं० १८८७ में प्रचार के लिए विहार का श्रीगणेश किया और कच्छ, गुजरात, काठि-यावाड़, मालवा में भी आप प्रचार के लिए पधारे। आपने जीत-मलजी स्वामी (जयाचार्य) को अपना उत्तराधिकारी चुना। आपका रावलिया में स्वर्गवास हुआ।

प्रश्न ६—जयाचार्य का परिचय क्या है ?

उत्तर—आप चौथे आचार्य थे। आपने ६ वर्ष की आयु में ही आचार्य श्री भारमलजी के पास दीक्षा ली। तेरापंथ की श्रीवृद्ध के लिए आपने अवर्णनीय प्रयास किये। संघीय कार्य की व्यवस्था बड़े समाजवादी ढंग से की। पुस्तकों का समाजीकरण, मर्यादाओं की व्यवस्था आपकी दीर्घ सूझ-बूझ की द्योतक है। आप जन्म-जात कवि थे। भगवती सूत्र पर राजस्थानी गीतिकाओं में ८० हजार श्लोकों की वृहद् टीका लिखी। कुल तीन लाख के लगभग पद्य रचना की। आपने १८ वर्ष पूर्व ही मघवागणि को युवाचार्य नियुक्त कर दिया था। आपका स्वर्गवास जयपुर में सं० १६३८ में हुआ।

प्रश्न ७—पांचवें छठे आचार्य कौन थे ?

उत्तर—पांचवें आचार्य श्री मघवागणि और छठे श्री माणक-गणि हो गये हैं। मघवागणि बड़े धीर गम्भीर थे। हृदय इतना कोमल था कि किसी को उलहना देते समय भी आपको खेद होता था। संस्कृत के भी बहुत अच्छे विद्वान् थे।

माणकगणि जयपुर के थे। आप कण्ठ के बड़े मधुर हृदय के उदार एवं शान्ति प्रिय थे। शासनकाल १६५४ तक रहा। आपका अकस्मात् स्वर्गवास हो जाने के कारण, पीछे—आचार्य की नियुक्ति न होने से संघ को बड़ी चिन्ता हो गई। आखिर समूचा साधु संघ मिला और सबने एक स्वर से डालगणि को अपना आचार्य घोषित कर दिया। तेरापंथ संगठन की यह एक अग्नि परीक्षा थी जिसमें पूर्ण सफल हुआ।

प्रश्न ८—डालगणि की विशेषताएं क्या थी ?

उत्तर—आप बड़े तेजस्वी थे, व्याख्यान शक्ति बड़ी ओजस्वी

व प्रभावशाली थी। मनुष्य के पारखी थे। आपने कच्छ में विशेष प्रचार किया। कालुगणि का निर्वाचन करके आप १६६६ में भादवा सुदी १२ को स्वर्ग पधारे।

प्रश्न ९—कालुगणि के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—आपने ११ वर्ष की उम्र में मघवागणि के पास दीक्षा ली। शुरू में ही बड़े गम्भीर थे कर्तव्यनिष्ठता और स्वाध्याय प्रियता आपकी अद्भुत थी। ३३ वर्ष की आयु में आचार्य बने। संघ में संस्कृत प्रचार की नींव आपके पुनीत प्रयत्न से ही लगी। स्वयं ने आचार्य बन कर ३८ वर्ष की उम्र में सिद्धान्त चन्द्रिका रटी थी। वत्सलता की साकार मूर्ति थी। सचमुच आप संघ के हृदय-सम्राट् थे। मुख पर ब्रह्मचर्य व शान्ति का अद्भुत तेज देखने वाले को नतमस्तक कर देता था। जिसने भी एक बार देखा, वह कभी भी नहीं भूलेगा। इसी स्थिति का मार्मिक वर्णन मुनि श्री सोहनलालजी ने यों किया है—

कियो उपकार अवतार ले जिनेन्द्र जोड,
खोड़ जस मेटी सोतो कैसे विसरे ही गो।
विज्ञातारू वत्सलता, चातुरता आदि चीज;
रीझ जो दिराई सोतो क्रीत उचरै ही गो॥
एक बार आंख से निहारी वा विशाल छटा,
वो भी उस मूरत को ध्यान में धरेही गो।
सोहन भनन्त हैं असन्नी की तो बात न्यारी,
सन्नी तो हमेश याद कालू ने करै ही गो॥

प्रश्न १०—वर्तमान आचार्य श्री का परिचय क्या है?

उत्तर—आपका जन्म १९७१ की कार्तिक सुदी २ को लाडनू में

हुआ। ११ वर्ष की उम्र में कालुगणि द्वारा आपका दीक्षा संस्कार हुआ। स्मृति एवं अध्ययन निष्ठा इतनी प्रबल थी कि ११ वर्ष की उम्र में ही संस्कृत एवं प्राकृत आदि के करीब २१ हजार श्लोक कण्ठस्थ कर लिए। आपकी विचारशीलता एवं अनुशासन की योग्यता का परिचय तो इसी से मिल जाता है कि २२ वर्ष की उम्र में ही इतने बड़े संघ के आचार्य चुन लिए गये। आप अद्भुत कवि व दार्शनिक हैं। आपके विचारों में दीर्घदर्शिता, बात की तह में पहुँचने की शक्ति एवं नवीन उन्मेष है। साधु संघ में चतुर्मुखी प्रगति का श्रेय आप ही को है। अनेक साधु-साध्वियां संस्कृत, प्राकृत व अन्यान्व-भाषाओं के अच्छे कवि, लेखक वक्ता हैं। विद्या व प्रचार क्षेत्र में समूचे जैन संघ के लिए तेरा-पंथ की प्रगति अनुकरणीय है। युग की गति को पहिचान कर आपने सं० २००५ में अणुव्रत आंदोलन का श्रीगणेश किया।

प्रश्न ११—अणुव्रत आन्दोलन क्या है ?

उत्तर—अणुव्रत आन्दोलन में बिना किसी जाति वर्ण, देश व धर्म के भेदभाव के मानव मात्र को संयम की प्रेरणा दी जाती है। इसके कुल ४८ नियम हैं। देश में हजारों व्यक्तियों ने इसकी प्रतिज्ञाएं ली हैं, व लाखों ने प्रेरणा पाई है। देश के प्रायः प्रमुख व्यक्तियों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

प्रश्न १२—तेरापंथ के तीन प्रमुख उत्सव कौन से हैं ?

उत्तर—तेरापंथ से तीन प्रमुख उत्सव—१. पाट महोत्सव २. चरम महोत्सव ३. मर्यादा महोत्सव।

पाटमहोत्सव—वर्तमान आचार्य के पट्टारोहण दिवस के उपलक्ष में मनाया जाता है इसकी शुरूआत सं० १९११ से हुई

थी। वर्तमान आचार्य श्री तुलसी का पाट महोत्सव भाद्रव शुक्ला नवमी को मनाया जाता है।

चरममहोत्सव—तेरापंथ के आदि आचार्य श्री भिक्षुस्वामी की शुभ स्मृति में मनाया जाता है। सं० १८६० की भाद्रव शुक्ला १३ को स्वामीजी दिवंगत हुये अतः यह हमेशा भा. शु. १३ को ही मनाया जाता है। इसकी शुरूआत १६१४ से हुई थी।

मर्यादा महोत्सव—यह हमेशा माघ शुक्ला सप्तमी को मनाया जाता है। उस दिन भिक्षुस्वामी का मर्यादा पत्र आचार्य श्री समूचे संघ को सुनाते हैं। इस अवसर पर सैकड़ों साधु-सतियां व हजारों श्रावक-श्राविकायें एकत्रित होते हैं। साधु, सतियां अपने गत वर्ष का विवरण आचार्य श्री को बताते हैं, व अगले वर्ष का कार्यक्रम आचार्य श्री द्वारा निश्चित किया जाता है। यह सं० १६२१ में वालोतरा में बड़ी दूरदर्शिता से प्रारम्भ किया गया था। तेरापंथ संगठन के लिये यह महोत्सव बड़ा ही महत्वपूर्ण व आवश्यक है।

इतिहास की महत्वपूर्ण तिथियाँ

१. चैत्र शुक्ला १३—भगवान् महावीर का जन्मदिवस।

२. मृगसर वदी १०—भगवान् महावीर का दीक्षादिवस।

३. वैसाख सुदी १२—केवल ज्ञान हुआ।

४ कार्तिक वदी अमावस—निर्वाण दिवस (दिवाली)।

———

तेरापंथ इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

	संवत्	तिथि	विवरण
(१)	१७८३	आषाढ़ सुदि १३	भिक्षु स्वामी का जन्म-दिवस (कंटालिया)
(२)	१८०३	——	भारमलजी का जन्म-दिवस
(३)	१८०८	मार्गशीर्ष बदि १०	भिक्षु स्वामी की रघुनाथजी के पास दीक्षा (बगड़ी)
(४)	१८१५	आषाढ़	भिक्षु स्वामी को बोधि प्राप्ति (राजनगर)
(५)	१८१६	चैत्र सुदि ९ शुक्रवार पुष्य नक्षत्र	भिक्षु स्वामी का संघपरित्याग
(६)	१८१६	आषाढ़ सुदि १५	भिक्षु स्वामी की नई दीक्षा।
(७)	१८१६	आषाढ़ सुदि १५	तेरापंथ की स्थापना (केलवा)
(८)	१८३२	मार्गशीर्ष बदि ७	तेरापंथ शासनकी प्रथम मर्यादा निर्माण तथा भारमलजी स्वामी को युवराज पदवी
(९)	१८४७	——	रायचन्दजी स्वामी का जन्म(रावलियामें)
(१०)	१८५७	चैत्र सुदि १५	रायचंदजी स्वामी की दीक्षा
(११)	१८६०	भाद्रव सुदि १३	भिक्षु स्वामी का स्वर्गवास (सिरयारी) व भारमलजी स्वामी का पट्टारोहण (सिरीयारी)

(१२)	१८६०	आश्विन सुदि १४	जयाचार्य का जन्म-दिवस (रोयट)
(१३)	१८६९	माघ वदि ७	जयाचार्य की दीक्षा (जयपुर)
(१४)	१८७८	माघ वदि ८	भारमलजी स्वामी का स्वर्गवास
(१५)	१८७८	माघ वदि ९	रायचंदजी स्वामी का पट्टारोहण
(१६)	१८९७	चैत्र सुदि ११	मघवा गणी का जन्म-दिवस
(१७)	१९०८	मार्गशीर्ष वदि १२	मघवा गणी की दीक्षा
(१८)	१९०८	माघ सुदि १४	रायचंदजी स्वामी का स्वर्गवास (रावलिया)
(१९)	१९०८	माघ सुदि १५	जयाचार्य का पट्टारोहण
(२०)	१९०९	आषाढ़ सुदि ४	डाल गणी का जन्म-दिवस
(२१)	१९१२	भाद्रव वदि ४	माणक गणी का जन्म-दिवस (जयपुर)
(२२)	१९१९	आश्विन वदि ९	जयाचार्य ने भगवति सूत्र की जोड़ आरम्भ की
(२३)	१९२३	भाद्रव वदि १२	डालगणी की दीक्षा
(२४)	१९२८	फाल्गुण सुदि ११	माणक गणी की दीक्षा (लाडनूं)
(२५)	१९१३	फाल्गुण सुदि २	कालुगणी का जन्म-दिवस(छापर
(२६)	१९३८	भाद्रव वदि १२	जयाचार्य का स्वर्गवास(जयपुर)
(२७)	१९३८	भाद्रव सुदि २	मघवा गणी का पट्टारोहण(जयपुर)
(२८)	१९४४	आश्विन सुदि ३	कालुगणी की दीक्षा (बीदासर)
(२९)	१९४९	चैत्र वदि ५	मघवागणी का स्वर्गवास (सरदार शहर)

(३०) १६४६ चैत्र बदि ८ — माणकगणी का पट्टारोहण (सरदार शहर)

(३१) १६५४ कार्तिक बदि ३ — माणकगणी का स्वर्गवास (सुजानगढ़)

(३२) १६५४ पोष बदि ३ — डालगणी का साधुओं द्वारा आचार्य पद पर निर्वाचन (लाडनूं)

(३३) १६५४ माघ बदि २ — डालगणी का पट्टारोहण

(३४) १६६६ भाद्रव सुदी १२ — डालगणी का स्वर्गवास

(३५) १६६६ भाद्रव सुदी १५ — कालुगणी का पट्टारोहण

(३६) १६७१ कार्तिक सुदि २ — आचार्य श्री तुलसी का जन्म-दिवस (लाडनूं)

(३७) १६८२ पोप वदि ५ — आचार्य श्री तुलसी की दीक्षा (लाडनूं)

(३८) १६६३ भादवा सुदि ३ — आचार्य श्री तुलसी को युवाचार्य पद (गंगापुर)

(३९) १६६३ भादवा सुदी ६ — कालुगणी का स्वर्गवास।

(४०) १६६३ भादवा सुदी ६ — आचार्य श्री तुलसी का पट्टारोहण

(४१) १६६४ कार्तिक वदी ७ — एक साथ ३१ दीक्षाये(बीकानेर)

(४२) २००५ फाल्गुन सुदी २ — अणुव्रत आन्दोलन का उद्घाटन (सरदार शहर)

(४३) २००८ — तेरापन्थ आचार्य का सर्व प्रथम दिल्ली चातुर्मास।

(४४) २०११ — तेरापन्थ आचार्य का सर्व प्रथम बम्बई चातुर्मास ।

(४५) २०१३ — आचार्य श्री की ऐतिहासिक दिल्ली यात्रा ।

(४६) २०१५ — तेरापंथ आचार्य का सर्वप्रथम उत्तरप्रदेश में पदार्पण एवं कानपुर चातुर्मास ।

तेरा पथ के महत्वपूर्ण आंकड़े

१. दीक्षायें--सं०-१८१७ से १९०० तक ८४ वर्षो में ३४२ दीक्षायें ।

सं० १९०१ से २००० तक १०० वर्षों में १४०० ।

सं० २००१ से २०१५ दीपावली तक २१६ लगभग ।

प्रान्त—राजस्थान, मध्यप्रदेश, पजाब, बम्बई, दिल्ली आदि ।

वय - कम से कम ९ वर्ष, ज्यादा से ज्यादा साधुओं में ६३ वर्ष सतियों में ७० वर्ष ।

२. योग्यता:—प्रायः साक्षर एवं ज्यादा से ज्यादा B. sc. तक ।

३. तपस्या:—(क) चौविहार—संतों में १९ दिन मुनि रामसुखजी, सतियों में २२ दिन सति जेठां ज

(ख) तिविहार—१०८ दिन मोतीजी स्वामी सतियों में २ मास ।

(ग) आछ के आगार—२१८ दिन अनोपचन्दजी स्वामी, २६६ दिन सति मुखाजी।

(घ) पंचोले पंचोले दो वर्ष तक दुलीचन्दजी स्वामी ।

(च) तेले तेले चौविहार—भीमजी स्वामी १३ वर्ष तक ।

(छ) वेले वेले २३ वर्ष तक चुन्नीलाल जी स्वामी ।

(ज) एकान्तर ४३ वर्ष तक गुलहजारी तपस्वी

(झ) आहार करके पानी न पीना १२१ दिन श्री सुखलालजी स्वामी ।

इक्कीसवीं कलिका

अनमोल वाणी

वीर वाणी

(१) समयं गोयम ! मा पमायए—क्षण-मात्र प्रमाद मत करो।

(२) पढमं नाणं तओ दया—पहले ज्ञान और फिर दया-आचरण।

(३) आहंसु विज्जाचरणं पमोक्खो—ज्ञान और क्रिया से ही मुक्ति मिलती है।

(४) ना पुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नलियं वए—विना पूछे मत बोलो और पूछने पर असत्य मत बोलो।

(५) कोहं असच्चं कुव्विज्जा—क्रोध को निष्फल करो।

(६) एवं खु नाणिणो सारंजंन हिंसइकंचणं—ज्ञान का सार यही है कि किसी की हिंसा मत करो।

(७) सव्वेसिं जीवियं पियं—सबको जीवन प्रिय है।

(८) सच्चं खु भगवं—सत्य ही भगवान् है।

(९) सच्चम्मि धिइ कुव्वहा—सत्य पर डटे रहो।

(१०) सव्वओ पमत्तस्स भयं-प्रमादी को सब तरह से भय है।

(११) अप्पा मित्त ममित्तं च—आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु है।

(१२) कडाण कम्माण न मुक्ख अत्थि—किए हुए कर्मों को बिना भोगे छुटकारा नहीं है।

(१३) सव्वमप्पेजिएजियं—आत्मा के जीतने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

(१४) उवसमेण हणे कोहं माणं मद्दवया जिणे।
माया मज्जव भावेण लोहो संतोसओ जिणे॥
क्रोध को शान्ति से, अभिमान को नम्रता से कपट को सरलता से और लोभ को संतोष से जीतो।

(१५) अह पंचहिं ठाणेहि जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थंमा कोहा पमा एणं रोगेणालस्य एण वा॥
अभिमान, क्रोध, व्यसन, रोग और आलस्य के कारण शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती।

भिक्षु—वाणी

(१) धन थी धर्म न थाय तीन काल रै मांयं
(२) हिंसा किया थो धर्म हुवै तो जल मथियां घी आवै
(३) दया नै हिंसा री करणी न्यारी, ज्यूं तावड़ो नै छांह
(४) दया ओलख नैं पालसी त्यांरै मुगत नजीक
(५) आज्ञा में धर्म छै जिनराजरो आज्ञा बारै कहैते मूढ़।
(६) जिन शासन में आज्ञा बड़ी
(७) जीव जीवे ते दया नहीं, मरै ते हिंसा मत जाण।
मारण वाला नै हिंसा कहीं, नहीं मारै ते दया गुण खाण॥

(८) पाप उदय थी दु.ख हुये जद मत करज्यो कोई रोष,
किया जिसा फल भोगवै पुद्गल रो सूं दोप ।

(९) करणी कदे निरफल नहीं ।

(१०) संता ने दुःख देसी ज्यांरो भलो कदे मत जाणो ।

(११) बुद्धि वाही सराईये जे सेवे जिन धर्म

(१२) उणोदरी में गुण घणा

(१३) धर्म ठिकाणे भूठ वोलै नहीं ।

तुलसी–वाणी

(१) हे प्रभो यह तेरापंथ, मानव मानव का यह पंथ ।

(२) जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझे विनोद ।

(३) हल है हलकापन जीवन का,

(४) अच्छा हो अपने नियमों से हम अपना संकोच करे ।

(५) आखिर अपना हित अपने से होगा समुचित साधन द्वारा ।

(६) सचमुच हम कितने सौभागी सदा त्रिवेणी न्हाये,
मानव जीवन, जैन धर्म, और भैक्षव शासन पाये ।

(७) निरवद्य विद्या विना वरै न बुद्धि विकाश ।

(८) क्षमा मूल है श्री जिनवर नो मार्ग ।

(९) वालक वय है कोरो वासन संगत सम संचारो ।

(१०) केवल तर्कवाद से पीड़ित है संसार समूचा ।

(११) "है ममकार वन्ध का कारण"

(१२) अमर रहेगा धर्म हमारा ।

(१३) संयम. खलु जीवनम् ।

---

(१) तपस्वी और संयमी जीवन ही उत्तम जीवन है।

(२) भारतीय सूत्र है—आवश्यकताओं की कमी करो।

(३) धन से मन को समाधान नहीं मिलता।

(४) हिंसा का पहला प्रसव है—वैर विरोध, दूसरा–भय, तीसरा दुःख।

(५) आरम्भ का पहला प्रसव है—संग्रह, दूसरा–वैषम्य, तीसरा दुःख।

(६) सुख का हेतु अभाव भी नहीं, अतिभाव भी नहीं, सुख का हेतु है स्वभाव (समभाव)

(७) मनुष्य मूढ़ हो रहा है, मूढ़ का अर्थ अज्ञानी नहीं, मूढ़ का अर्थ है मोहग्रस्त।

(८) व्रती बनने के बाद इच्छायें सीमित नहीं होती, किन्तु इच्छायें सीमित हो जाती हैं, तब ही व्रती बनता है।

(९) विद्या का चरम फल है—आत्म विकास।

(१०) धर्म का द्वार सब के लिए खुला है।

(११) अपने आप अनुशासन में चलना सीखें, चलाने से तो पशु भी चलता है, किन्तु मनुष्य पशु नहीं है।

परिशिष्ट (क)

३२ आगमों के नाम—(११ अंग सूत्र, १२ उपांग सूत्र ४ मूल सूत्र, ४ छेद सूत्र, १ आवश्यक सूत्र)

(क) ११ अंग सूत्र—१ आचारांग , २ सूयगडांग , ३ ठाणांग, ४ समवायांग, ५ भगवती, ६ ज्ञाता धर्म कथा, ७ उपासकदसांग, ८ अन्तगड़दसांग , ९ अनुत्तरोववाई , १० प्रश्न व्याकरण, ११ विपाक ।

(ख) १२ उपांग सूत्र—१ उववाई, २ रायप्रसेणी, ३ जीवाभिगम, ४ पन्नवणा, ५ जम्बूद्वीप पन्नति, ६ चन्द पन्नत्ति, ७ सूर्य पन्नत्ति, ८ निरयावलिया, ९ कप्पवडंसिया, १० पुप्फिया, ११ पुप्फचुलिया, १२ वन्हिदिशा ।

(ग) मूल सूत्र—१ दशवैकालिक, २ उत्तराध्ययन, ३ नन्दी, ४ अनुयोगद्वार ।

(घ) ४ छेद सूत्र—१ व्यवहार, २ बृहत्कल्प (वेद कल्प) ३ निशीथ, ४ दशाश्रुत स्कंध ।

(ङ) १ आवश्यक—आवश्यक सूत्र ।

गोचरी के ४२ दोष

गवेषणा के १६ उद्गम दोष—

(१) आधाकर्म—साधु का उद्देश्य रखकर बनाना ।

(२) औद्देशिक—सामान्य याचकों का उद्देश्य रख कर बनाना ।

(३) पूतिकर्म—शुद्ध आहार को आधाकर्मादि से मिश्रित करना।

(४) मिश्रजात–अपने और साधु के लिए एक साथ बनाना।

(५) स्थापन–साधु के लिए दुग्ध आदि स्थापित करके अलग रख देना।

(६) प्राभृतिका–बहराने के लिए जीमणवार आदि का दिन आगे पीछे कर देना।

(७) प्रादुष्करण–अन्धकार युक्त स्थान में दीपक आदि का प्रकाश करके भोजन देना।

(८) क्रीत–साधु के लिए खरीद कर लाना।

(९) प्रामित्य–साधु के लिए उधार लाना।

(१०) परिवर्तित–साधु के लिए अट्टा-सट्टा करके लाना।

(११) अभिहृत–साधु के लिए दूर से लाकर देना।

(१२) उद्भिन्न–साधु के लिए लिप्त पात्र का मुख खोल कर घृत आदि देना।

(१३) मालापहृत–ऊपर की मंज़िल से या छीके वगैरह से सीढी आदि से उतार कर देना।

(१४) आच्छेद्य–दुर्बल से छीन कर देना।

(१५) अनिसृष्ट–सांझे की चीज दूसरों की आज्ञा के बिना देना।

(१६) अध्यवपूरक–अपने लिए बनाए जाने वाले भोजन में और बढ़ा देना। साधु के लिए उद्गम दोषों का निमित्त गृहस्थ होता है।

गवेषणा के १६ उत्पादन दोष—

(१) धात्री—धाय की तरह गृहस्थ के बालकों को खिला-पिला कर, हंसा-रमा कर आहार लेना।

(२) दूती—दूत के समान संदेहवाहक बन कर आहार लेना।

(३) निमित्त—शुभाशुभ निमित्त बताकर आहार लेना।

(४) आजीव—आहार के लिए जाति कुल आदि बताना।

(५) वनीपक—गृहस्थ की प्रशंसा करके भिक्षा लेना।

(६) चिकित्सा—औषधि आदि बताकर आहार लेना।

(७) क्रोध—क्रोध करना या शापादि का भय दिखाना।

(८) मान—अपना प्रभुत्व जमाते हुए आहार लेना।

(९) माया—छल कपट से आहार लेना।

(१०) लोभ—सरस भिक्षा के लिए अधिक घूमना।

(११) पूर्वपश्चात्संस्तव—दान दाता के माता पिता अथवा सास ससुर आदि से अपना परिचय बताकर भिक्षा लेना।

(१२) विद्या—जप आदि से सिद्ध होने वाली विद्या का प्रयोग करना।

(१३) मंत्र—मन्त्र प्रयोग से आहार लेना।

(१४) चूर्ण—चूर्ण आदि वशीकरण का प्रयोग करके आहार लेना।

(१५) योग—सिद्ध आदि योग विद्या का प्रदर्शन करके आहार लेना।

(१६) मूलकर्म—गर्भस्तम्भ आदि के प्रयोग बताना।

उत्पादन के दोष साधु की ओर से लगते है। इनका निमित्त साधु ही होता है।

ग्रहणैषणा के १० दोष—

(१) शङ्कित—आधाकर्मादि दोषों की शंका होने पर भी लेना।

(२) म्रक्षित—सचित का संघट्टा होने पर आहार लेना।

(३) निक्षिप्त—सचित पर रखा हुआ आहार लेना।

(४) पिहित—सचित से ढंका हुआ आहार लेना।

(५) संहृत—पात्र में पहले से रखे हुए अकल्पनीय पदार्थ को निकाल कर उसी पात्र में देना।

(६) दायक—गर्भिणी आदि अनाधिकारी से लेना।

(७) उन्मिश्र—सचित से मिश्रित आहार लेना।

(८) अपरिणत—पूरे तोर पर पके बिना शाकादि लेना।

(९) लिप्त—दही, घृत आदि से लिप्त होने वाले पात्र या हाथ से आहार लेना, पहले या पीछे धोने के कारण पुरः कर्म तथा पश्चात्कर्म दोष होता है।

(१०) छर्दित—छींटे नीचे पड़ रहे हो, ऐसा आहार लेना।

गृहस्थ तथा साधु दोनों के निमित्त से लगने वाले दोष ग्रहणैषणा के दोष कहलाते है।

ज्ञान वाटिका का शुध्धा शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	दे	न दे
२५	१–२	(दूबारा छप गई)	
३२	४	देश में	देश में वह
४७	२	संयोगी	सयोगी
५८	१	अघाति	अघाती
८१	१०	ह्वन	वह्न
८१	१७	जैसे नैत्र	वैसे नैत्र
८२	५	स्कन्धकाय	स्कंध
८४	६	समय तक	समय कम तक
१०२	३	परमाणाणु	परिमाणाणु
११७	३	सम्स्त द्रव्यत्व,	समस्त द्रव्य द्रव्यत्व
१२१	१६	अद्‌म प्रभु	पद्‌म प्रभु
१२१	२१	नाभिप्रभु	नमिप्रभु
१२५	५	जगत का	जगत को
१२६	६	प्रमुख और	प्रमुख
१२७	१	किस	जिस
१३१	८	कुदा कुदा चार्य	कुंद कुंदा चार्य
१३२	४	जिन सेन	वीरसेन पहले हुए
१३२	१५	मलयगिरि	मल्लिषेण की स्यादवाद मंजरी
१३२	१५	मलयगिरि	मलयगिरि की पन्नवणरीका आदि अनेक टीकायें

आदर्श पोथी

आदर्श-पोथी

परिशिष्ट (ख)

(१)

अ-अर्हं-मैं अर्हं (वीतराग) का उपासक हूं ।

वीतराग हमारे देव हैं भगवान् हैं। ये राग द्वेष कषाय आदि से मुक्त हैं। उनके गुणों का स्मरण करना, उनके बताये हुये मार्ग पर चलना, दूसरों को चलाने की प्रेरणा देना, यही उनकी उपासना है।

(२)

अ-अमरकुमार-'मैं अमरकुमार की तरह कष्टों में भी परमेष्टि मन्त्र को जपता हुआ अपना कल्याण करूं ।'

अमर कुमार—एक वार राजा श्रेणिक ने एक सुन्दर महल बनवाया। महल बन कर ज्योंही तैयार होता कि ढह पड़ता.......
पण्डितों ने इसका उपाय बताया कि एक बत्तीस लक्षणों वाले पुरुष का होम (जिन्दा जलाना) करो। राजा ने ऐसा पुरुष मंगवाया और उसके बराबर सोना तोल कर देने को कहा। एक 'भद्रा' नाम की लोभिन माँ ने अपने 'अमर कुमार' नाम के पुत्र को इसके लिये सौंप दिया।

महारानी चेलना ने राजा को यह 'वाल हत्या' न करने के लिये वहुत कुछ समझाया। किन्तु राजा टस से मस नहीं हुआ। तव रानी ने विलखते हुये वालक अमरकुमार के पास आकर धीरज बंधाया और कहा—मैं तुम्हे एक मन्त्र वताती हूँ उसका जाप करो, जिससे तुम्हारी रक्षा होगी। लो! वह मन्त्र यह है—"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोय सव्व साहूणं।"

अमरकुमार ने कहा—यह तो मैं भी जानता हूँ। मैंने साधुओं के पास सीखा था। रानी ने कहा—तो फिर घवराओ मत, शान्ति से इसको रटते जाओ। इतने मे होम करने वाले आये। कुमार को अग्निकुण्ड में ज्यों ही फेका त्यो ही अग्नी ठण्डी हो गई। एक सिहासन वन गया, जिस पर कुमार वैठ गया और होम करने वाले वेहोश होकर गिर पड़े। राजा को जव यह खवर मिली तो दौड़ कर आया और अमरकुमार के चरणों में झुक कर उसे राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना करने लगा। अमरकुमार ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा—जिससे मेरी रक्षा हुई है, मैं तो उसी की शरण में जाऊंगा। अन्त में कुमार ने मुनि व्रत लेकर आत्म-कल्याण किया।

(३)

आ—आसाढ़—'मैं आषाढ़ मुनि की तरह गुरु सीख को हर समय याद रखूं।'

आषाढ़—एक गुरु थे, उनके अनेक शिष्यों में से एक प्रिय शिष्य था आषाढ़ मुनि। वह एक वार भिक्षा लेने के लिये किसी घर गया, वहाँ उसे एक लड्डू वहराया (दिया) गया। मुनि ने सोचा

एक लड्डू तो गुरुजी को दूंगा, एक मुझे भी चाहिये। एक उसको और एक उसको। उसने अपने तपोबल से रूप बदला और घर के अन्दर जाकर एक लड्डू फिर ले आया। इस प्रकार तीन बार रूप बदल कर चार लड्डू लेकर चलने लगा।

एक नट ने मुनि को इस तरह रूप बदलते देख कर सोचा अगर यह साधु मेरे घर में आ जाये तो फिर तरह तरह के रूप बदल कर संसार को चकित करता हुआ हमें मालामाल कर सकता है। उसने अपनी पुत्री "भवनसुन्दरी" और "जयसुन्दरी" नामकी दो सुन्दर नर्तकियों को मुनि को किसी भी तरह अपने चंगुल में फंसाने की बात कह कर मुनि को लेने के लिये बाहर आया। मुनि को विनती करके भिक्षा के मिष अपने घर पर ले आया। वह बाहर गया कि उसकी दोनों पुत्रियां आकर मुनि को घेर कर खड़ी हो गई। तरह तरह के हास विलास करके भोले से मुनि को मोहित कर लिया। मुनि अपने नियमों से गिर रहा था फिर भी अपने गुरु को पूछने के लिये आया। अपनी झोली पात्र सम्हलाकर जाने की आज्ञा मांगी। गुरु के बहुत कुछ समझाने बुझाने पर भी टस से मस नहीं हुआ। आखिर गुरु ने हारकर कहा—कम से कम मेरी एक बात तो मान लो।

शिष्य—क्या?

गुरु—जिस घर में मदिरापान हो उस घर में मत रहना।

शिष्य—ठीक है, यह तो मानूंगा।

आषाढ़ गुरुजी की शर्त को उन नर्तकियों से स्वीकार कराके वहां आनन्द से रहने लगा। जगह जगह पर अद्भुत नाटक दिखा कर घर को धन से भर दिया।

एक दिन की वात है; आषाढ़ कहीं नाटक करने गया था। पीछे से वे दोनों मदिरा का प्याला पीकर औंधे मुंह लेट रही थीं। आषाढ़ अचानक महलों में आया तो देखा कि एक तरफ खाली प्याले पड़े हैं, वे दोनों वेहोश सी पड़ी हैं। मुंह पर मक्खियाँ भनभना रही हैं। आषाढ़ का दिल घृणा से भर गया। उसे गुरुजी की वात याद आई, जिसको वह आते-आते स्वीकार करके आया था। बस तुरन्त अपने गुरु की सीख को याद करके चुपचाप वहाँ से चल पड़ा "अन्ततो गत्वा" फिर से अपनी आत्म-साधना में लग गया।

गुरुजी की एक ही सीख 'डूवते को तिनके का सहारा' बन कर वचाने में समर्थ हो गई।

(४)

इ—इलायची कुमार—मैं इलायची कुमार की तरह भावना-बल से आत्म-शक्ति को जागृत करूं।

इलायची कुमार—वह सेठ का इकलौता पुत्र था, भरा-पुरा घर, मां-वाप का प्यार, साथियों की मण्डली, ये सब उसकी उद्दण्डता के कारण वन गये।

एक वार शहर में दूर देश की 'नट मण्डली' आई। इलायची कुमार भी नाटक देखने को गया। इसका जी नाटक में नहीं लगा। नटों की एक सुन्दर लड़की को देखकर वह पागल वन गया। वार वार उसी को देखने लगा......

नाटक खत्म होने पर सब उठ-उठ कर चले गये, वह भी अपने घर आ गया, किन्तु विल्कुल उदास! सुस्त!! न खाना

खाता, न बोलता और न कुछ करता ही। पिता के बहुत मनाने पर इसने बिना किसी पर्दे के सारी बात कह दी—मैं तो उस नट-कन्या के साथ विवाह करूंगा।

सेठ के होश-हवाश उड़ गये, उसको समझाना भी बड़ी टेढ़ी खीर थी। आखिर हार कर सेठ ने उस नट-मण्डली के अध्यक्ष को बुलया और अपने पुत्र की जिद और मूर्खता भरी राम कहानी सुनाकर कन्या की मांग की।

नट को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—मेरी कन्या को बिना अपने समाज से आज्ञा लिये मैं एक सेठ के पुत्र को नहीं दे सकता। आज्ञा लेने के लिये यह शर्त है— 'कि वह अपने घर वार को छोड़ कर, मेरी कन्या को साथ लेकर नाटक करे, उसमें मिले हुए धन से मैं समूची कौम को भोजन करा के आज्ञा लूं। अगर कौम आज्ञा देगी तो मैं इसको अपनी पुत्री दे सकता हूँ।

सेठ को तो कुछ नहीं सूझ रहा था। इधर पड़े तो खाई उधर पड़े तो कुआ। किन्तु बीच ही में इलायची कुमार बिना शर्त के स्वीकार करके उसके साथ चलने की तैयारी करने लगा।

इलायची कुमार नृत्य कला में निपुल बन कर उस कन्या के साथ राजदरबार में नाटक करने आया। एक बांस रोपा गया, बांस पर एक सुपारी, और सुपारी पर एक पैर रख कर नाटक करने लगा। राजा, राजकुमार आदि हजारों दर्शक मन्त्र मुग्ध से बन रहे हैं। इधर राजा ने इस नट पुत्र की ओर देखा तो उसकी सुन्दरता पर मोहित हो गया। सोचा—अगर नट मर जाये तो यह सुन्दरी मेरे हाथ लग सकती है। इसलिये इसे मारने की तजवीज़ करने लगा।

वह एक बार नाटक खत्म करके नीचे उतरा। राजा ने मारने की नीयत से दूसरी बार और तीसरी बार फिर बांस पर चढ़ाया। चौथी बार फिर राजा ने कोई बहाना बनाके उसे चढ़ा दिया।

इलायची कुमार बांस पर नाचता हुआ एकाएक सामने देखता है, एक घर में सुन्दरी स्त्री मुनि को भिक्षा दे रही है और मुनि नीची नजर किये ना—ना कर रहे हैं। इलायची कुमार की भावना शुद्ध होने लगी। सोचा—यह भी मनुष्य है जो स्त्री की ओर देखता तक नहीं, और मैं भी जो अपनी कोख को लजा कर सारे परिवार को दु.खी करके, इस नट कन्या के लिये मरने तक को तैयार हो रहा हूँ। हाय!!" यों सोचते सोचते भावनाओं में इतनी निर्मलता बढ़ी कि तत्काल आकाश में देव दुन्दुभि बजने लगी कि इलायची कुमार केवली हो गये। जन समुदाय, भावना बल का चमत्कार देख कर इला यची कुमार केवल ज्ञानी को वन्दना करने लगा।

(५)

ई–इन्द्रभूति–'मैं इन्द्रभूति की तरह सत्य का जिज्ञासु रहूँ।'

इन्द्रभूति— इन्द्रभूति नाम के गोतम ब्राह्मण थे, बड़े विद्वान् और बड़े अभिमानी थे।

एक बार भगवान् महावीर की सर्वज्ञता के समाचार सुनकर उनको जीतने के लिये अपने ५०० शिष्यों को लेकर प्रभु के समवशरण में आये।

इन्द्रभूति ज्यों ज्यों भगवान् के पास आये त्यों त्यों अभिमान दूर भागता गया और भगवान् के प्रति आकर्षण होने लगा।

भगवान् ने कहा—गोतम ! तुम इतने बड़े विद्वान् हो फिर भी यह शंका रखते हो कि 'जीव है या नहीं ?

गोतम का घमण्ड तो पानी हो गया। मेरे मन को बात जानने वाला यह निस्सन्देह सर्वज्ञ है। भगवान् के चरणों में लोट पड़े। इस शङ्का का समाधान पूछा—तो भगवान् ने उन्हीं के 'वेद ग्रन्थों से बताया कि वहां तीन 'द' आये हैं। इसका मतलब है—

"दया करो, दान करो, दमन करो" अगर जीव ही नहीं है तो दया, दान, दमन कौन करेगा, किस पर करेगा, किससे करेगा।

गोतम की आंखें खुल गई, वहीं पर ५०० शिष्यों के साथ भगवान् के शिष्य बन गये। ये गोतम स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये बड़े विद्वान् थे, फिर भी बात बात में भगवान् से जिज्ञासा भरे प्रश्न करते, और अपने ज्ञान में चार चांद लगाते रहते।

(६)

उ—उदायन—'मैं उदायन की तरह अपने अपराधी को भी क्षमा करना सीखूं।'

उदायन—उदायन बड़ा प्रतापी राजा था। उसकी एक स्वर्ण गुलिका नाम की सुन्दरदासी थी, जिसको 'चण्ड प्रद्योतन' नाम के राजा ने चुरा ली। इस बात से उदायन के मन में आग

लग गई। चण्ड प्रद्योतन पर भयंकर आक्रमण किया और उसे बन्दी बना कर आ रहा था कि मार्ग में ही 'संवत्सरी' आ गई।

उदायन भगवान् का श्रावक था, इसलिये संवत्सरी का पौषध करने के लिये मार्ग में रुका।

रसोइये ने चण्ड प्रद्योतन से पूछा—आपके लिये क्या बनाऊं? आज महाराज के उपवास है।

बन्दी राजा का दिल शंका से भर गया और सोचा, यह और कुछ नहीं मुझे भोजन में विष देकर मारने का षड्यन्त्र है। बोला—मैं भी उपवास रखूंगा, और उदायन के बराबर में बिछोना करके उसी ढंग से बैठ गया।

उदायन ने प्रतिक्रमण करके समस्त जीवों से क्षमायाचना करते २ कैदी राजा से भी 'खमतखावणा' किया।

चण्ड प्रद्योतन ने अवसर पाकर कहा—यह क्या 'खमत खावणा' मेरा राज्य लूट कर, मुझे बन्दी बनाकर, फिर भी क्षमा मांगते हो? मैं नहीं करता....

उदायन चुपचाप रहा क्योंकि पौषध में और क्या बोल सकता था। सुबह होते होते पौषध पूर्ण करके कहा—"मुझे यह सब अन्याय के प्रतिकार के लिये करना पड़ा, मेरे दिल में तुम्हारे प्रति कोई द्वेष नहीं है।" यह कह कर राज्य वापिस लौटा कर राजा को मुक्त बनाया। गले से गला भिड़ा कर क्षमा का ऊंचा आदर्श रखा।

× × × ×

ऊ ऊर्मि–"मैं ऊर्मियों (लहरों) की तरह चंचल मन को प्रसन्न चन्द्र राजर्षि की तरह वश में करने का प्रयत्न करूँगा"

ऊर्मि—(प्रसन्नचन्द्र राजर्षि) चंचल मन–यह मन समुद्र की ऊर्मियों (लहरों) की तरह चंचल होता है। कभी, कहीं भटकता है, कभी कहीं। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की तरह उसे अपने वश में करना चाहिये।

प्रसन्नचन्द्र बड़े तेजस्वी राजा थे। संसार से उदासीन होकर भगवान् के पास दीक्षित हो गये। एक बार भगवान् की धर्म सभा (समवशरण) के बाहर सूर्य के सामने एक पैर पर खड़े खड़े ध्यान कर रहे थे। उधर से सम्राट् श्रेणिक भगवान् के दर्शन करने को आ रहे थे। मुनि को वंदना स्तुति करके आगे निकले, पीछे पीछे एक दूत आ रहा था। राजर्षि को देख कर बोला–तुम यहाँ साधु बन कर आँखे मीचे खड़े हो, राज्य को दुश्मन लूट रहे हैं, "परिवार त्राहि त्राहि कर रहा है। इस समय हाथ में तलवार लो और राज्य की रक्षा करो।"

यह बात मुनि के मन "घास में चिनगारी" का काम कर गई, भावों में उथल पुथल मची, सोचा–अभी सब शत्रुओं को साफ कर दूं। राजर्षि मन ही मन भयंकर युद्ध मचाने लग गये।

उधर सम्राट श्रेणिक ने भगवान् से प्रश्न किया–इस घोर तपस्वी की कैसी उत्तम गति होगी ?

भगवान् ने उत्तर दिया—पहली नरक, फिर दूसरी, तीसरी, आखिर सातवीं नरक तक बताया .... सुन कर सब दंग थे ......

उधर मुनि ने जोश में आकर शत्रु पर मुकुट फैंकने के लिये शिर पर हाथ धरा तो शिर बिल्कुल सफाचट था-ध्यान लगा-अरे। मै तो मुनि हूँ !!

—कहाँ है राज्य ? कहाँ है शत्रु ? और कहाँ है मेरा मुकुट ? मैं किधर भटक गया ? राजर्षि ने मन के दुष्ट घोड़े को घेरा, पश्चात्ताप करने लगे, शुद्ध भावों की सीढियों पर चढ़ने लगे।

राजा श्रेणिक भी चक्कर में पड़ गया—भगवान् ने यह क्या बताया ? फिर पूछा—भगवान्। उस घोर तपस्वी की कौनसी गति होगी ?

भगवान् ने कहा—पहला स्वर्ग—अब दूसरा स्वर्ग, बढ़ते बढ़ते सर्वार्थ सिद्ध (२६ वाँ स्वर्ग) बताया। इतने में ही देवगण दुंदुभी बजाने लगे—"प्रसन्नचन्द्र राजर्षि सर्वज्ञ बन गये" तब कहीं जाकर सब की समझ में आया—यह सब मन का चमत्कार ही था। मन को जीतने में ही सबसे बड़ी विजय है।

(८)

ऋ-ऋषभदेव—"मैं ऋषभदेव की तरह भूख प्यास के कष्टों को सहकर भी धर्म की ज्योति जगाता रहूँ।"

ऋषभदेव—इस अवसर्पिणी काल में पहले राजा, पहले मुनि और पहले तिर्थंकर हुये भगवान् ऋषभ नाथ। उनके पिता

का नाम नाभि राजा और माता का नाम 'मरुदेवी' था। इनसे पहले "युगलिया" होते। जिनमें न कोई राजा होता था, न सेवक, न खेती वाड़ी की जाती थी, न व्यापार। याने स्त्री, पुरुप साथ जन्मते, जन्म भर साथ रहते, कल्प वृक्ष से उनकी आवश्यकताये पूरी होती, इस प्रकार यह अकर्म युग था ※। भगवान् ऋपभनाथ ने इस व्यवस्था को अपने हाथ में ली व लोगों को राज्य करना, खेती करना, व्यापार करना, पढ़ना लिखना आदि अनेक नई बातें सिखलाई, इसलिये इस युग को कर्म युग कहा गया।

ऋपभनाथ के भरत वाहुवलि, आदि १०० पुत्र और ब्राह्मी, सुन्दरी नाम की दो पुत्रियाँ थी। ऋपभनाथ ने ८३ लाख वर्प पूर्व तक राज्य करके दीक्षा ली। किन्तु तब के लोगों में यह बिल्कुल नई चीज थी, इसलिये भगवान् को वे हीरे, पन्ने, हाथी; घोड़े आदि भेट करते जिन्हे वे लेते नहीं और रोटी देना किसी के ध्यान में नहीं आया। भगवान् खुद मांगते नहीं थे। इसी समस्या में एक वर्प तक लगातार भूख प्यास आदि अनेक कष्ट सहने पड़े। एक वर्प वाद भरत के पौत्र 'श्रेयांस' कुमार ने पहला दान दिया। एक हजार वर्प की घोर तपस्या के वाद केवल ज्ञानी बन कर दुनियां को धर्मोपदेश दिया।

(६)

लृ-लाभ—"मैं लोभ की अग्नी को कपिल की तरह संतोप के पानी से शान्त करूँ।"

※ इसके वाद ७ कुल कर हुये जो अपने समय के प्रमुख पुरुप होते, इन्हें कल्प वृक्षो से पूरी चीजें न मिलने से कुछ अव्यवस्था होने लगी।

कपिल—जब थोड़ा सा लाभ होता है तो मन ललचाता है और लोभ बढ़ने लगता है। फिर वह कपिल की तरह सन्तोष से ही शान्त हो सकता है।

कपिल ब्राह्मण का पुत्र था। पिता के गुजर जाने के बाद मां ने कपिल को उसके पिता के एक विद्वान और धनी मित्र के घर पढ़ने को भेजा। वहाँ रहते रहते एक दासी से उसका प्रेम हो गया–पढ़ाई तो छूट ही गई, दासी ने बच्चों के पालन पोषण के लिये धन लाने के लिये वहाँ के राजा के पास भेजा। जो प्रतिदिन प्रातःकाल सबसे पहले आने वाले को दो माशा सोना देता था।

कपिल को रात भर नींद नहीं आई। सबसे पहले राज दरबार में पहुँचने की धुन में आधी रात को ही घर से निकल गया। गली कूचों में घूमते को पुलिस वालों ने चोर समझ कर पकड़ लिया, और सुबह होते होते राजा के सामने ला खड़ा किया।

कपिल तो उदास था, उसकी सारी आशायें मिट्टी में मिल गई। सोने की जगह उसे अब तो "जेल" मिलेगी। किन्तु फिर भी उसने राजा के पूछने पर अपनी सच्ची राम कहानी सुना दी।

राजा इसकी सच्चाई पर खूब प्रसन्न हुआ, और कहा–तुझे जो कुछ चाहिये सो माँग ले।

कपिल की तो किस्मत खुल गई। एकान्त में जाकर सोचने

लगा—क्या माँगना चाहिये ? दो मासे सोने से तो क्या होगा ? अब तो परिवार बढ़ जायेगा, हजार और लाख रुपये भी पूरे न होंगे.......... करोड़ों अरबों रुपयों से भी राजी नहीं हुआ। सोचा–राजा खुश हुआ है तो राज ही माँग लेना चाहिये। किन्तु राज से भी सन्तोष नहीं हुआ। फिर उसका ध्यान गया अरे ! मै तो दो मासे स्वर्ण लेने आया सो इतना लोभी बन गया। छि ! छि: !! "धन से कभी भी धाप नही आती" अब इसका मन काबू में आ गया और मुनि वेश में राजा के सामने आकर उपस्थित हुआ।

राजा ने कहा—यह क्या ? जो सोचा हो सो माँग लो।

कपिल तो अब सच्चा त्यागी बन गया। बोला—

"जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पव्वड्ढइ।

दो मासे कयं कज्जं कोडिये विन निट्ठियं,"

"राजन् ! जहाँ लाभ होता है वहाँ लोभ भी बढ़ता है, दो माशा सोने के लिये आया था, लेकिन करोड़ों से भी सन्तोष नहीं होता।"

इसलिये अब इस लोभ की अग्नि को सन्तोष के पानी से शान्त कर दिया है।

राजा मन्त्री आदि सभी त्यागी मुनि के चरणों में झुक गये.. . ... ।

(१०)

ए-एक दिन का राज्य—"मैं मनुष्य जीवन को एक दिन का राज्य समझकर सदा सजग रहूँ।

एक दिन का राज्य—"अध्रुवं जीवियंनचा"-जीवन अध्रुव है, जो जन्मते हैं वो मरते हैं। किन्तु संसार में जन्म का महत्व नहीं, मृत्यु का महत्व है। मनुष्य की मृत्यु किन परिस्थितियों में होती है, इसी पर उसके जीवन का मूल्यांकन होता है। इसलिए कहा गया है—

> **जब तुम जन्मे जगत में, जग हँसा, तुम रोये**
> **ऐसा काम कोई कर चलो, तुम हँसमुख जग रोये।**

यहां पर भलाई व बुराई जैसी भी मनुष्य करता है, वही दुनियां में शेष रहती है। सचमुच में यह जीवन एक दिन का राज्य है, जिसमें कोई चाहे तो सुयश भी कमा सकता है और बदनाम भी हो सकता है। एक विद्यालय में पढने वाले अनेकों छात्रों में से तीन मित्र थे। एक राजकुमार और दो बनिक पुत्र। मैत्री की सहनाणी (निशानी) के रूप में राजकुमार ने दोनों मित्रों को लिखकर दे दिया कि—मैं राजा बनने के बाद तुम्हें एक एक वरदान दूंगा। कुछ दिनों बाद वह राजकुमार राजसिंहासन पर बैठा और वे दोनों मित्र मांगने आये।

पहले ने एक दिन का राज्य मांगा, दूसरे दिन से शहर में उसकी आज्ञा प्रसारित कर दी गई। राजा बनते ही उसने आकर आदेश दिया—सब राजकर्मचारियों का वेतन आधा कर दिया, कर दुगने कर दिये, हर प्रकार से राज भण्डार को भरने का प्रयत्न किया। वह स्वयं तो सारे दिन, स्नान भोजन, आराम

आदि मे मस्त रहता। रातभर नाटक, संगीत व निद्रा में बीत गई · ·प्रातः होते ही सेवकों ने उठाकर राजमहल से निकाल दिया। बाहर जाते ही सैकड़ो लोग उसे बाहर घेर कर फिर गये। कोई गालियां निकालता, कोई उस पर थूंकता, और कोई कुछ ही कहता। दूसरे मित्र ने भी एक दिन का राज्य लिया। उसका राज्यकाल आते ही सारे कर्मचारियों के वेतन दुगने, तीगुने कर दिये, जनता के कर माफ कर दिये, संस्थाये व अन्य व्यक्तियों को दान देना शुरु कर दिया। दिन भर जनता के हित के लिये कार्य करके सायंकाल होते होते राज्यभार मंत्री को सम्हला कर अपने घर को चला गया हजारों मनुष्यों ने उसका स्वागत किया घर घर में उसकी चतुराई व नीति का बखान होने लगा ··· ······।

यही बात मनुष्य जीवन की है, दो दिनों के जीवन मे एक संसार में सुयश कमा लेता है, एक युग युग तक बदनाम होता रहता है।

(११)

ऐ ऐवंत कुमार—"मैं ऐवंत कुमार की तरह गोतम जैसे ज्ञानी की अगुली पकड लूं।"

ऐवंत कुमार - पोलासपुर का राजकुमार था—ऐवंतकुमार। बड़ा ही हंस मुख, सुन्दर और सरल। अपने साथियों के साथ खेल रहा था, कि एक तपस्वी व तेजस्वी साधु को अपने द्वार की ओर आते देखा, बड़े मिठास से पूछने लगा—आप कौन है ?

गोतम—हम साधु हैं।

ऐवंत—कहां रहते हैं ?

गोतम—हमारे गुरु के पास।

ऐवंत—यहां क्यों आये हैं ?

गोतम—भिक्षा के लिये।

ऐवंत—तो चलो हमारे घर में, और मुनि की अंगुली पकड़ कर अपने घर में ले आया। रानी अपने पुत्र को इस तरह गोतम की अंगुली पकड़े आते देखकर बड़ी खुश हुई। वह भी सामने आई, वन्दना करके शुद्ध आहार बहराया (भिक्षा दी)।

ऐवंत कुमार गोतम स्वामी के साथ साथ भगवान् के पास आया। उन्हें देखते ही उनका शिष्य बन जाने की भावना जग गई। घर पर आकर बहुत आग्रह करके माता पिता की आज्ञा लेकर भगवान् महावीर का शिष्य बन गया।

एक बार बाहर जङ्गल गये थे, वहां नदी नाले बह रहे थे। बाल मुनि के मन चपलता सवार हो गई कि अपनी पात्री को नाव मानकर पानी में तैराने लगे। कहते जाते—मैं तैरू, मेरी पात्री तैरे।

वृद्ध साधुओं ने देखा, मुनि को समझाया, और भगवान् से आकर भी कहा। भगवान् ने कहा—वह अभी चपल है। किन्तु इसी जन्म में अपने कर्म बन्धनो को तोड़ कर मुक्त बनेगा .....

ऐवंत कुमार ने गोतम जैसे गुरु की आंगुली पकड़ी थी और इतने भर से उसे मुक्ति का रास्ता मिल गया.........

औ-औसबिन्दु-"मै औस बिन्दु की तरह चमचमाकर धूल में मिलने वाली सम्पत्ति पर अभिमान नहीं करूँ

औस बिन्दु :—घास की हरी हरी पत्तियों पर औस की बून्दे चमक चमक कर सूर्य की किरणों के प्रकाश में सचमुच मोती सी लग रही थी जैसे वह मन ही मन में इठला रही थी। मैं कितनी चमकदार हूँ, कितनी सुन्दर हूँ…… ….।

पवन का एक झोंका आया वह पानी झड़कर धूल में मिला और सूख गया। अव मोती की सी चमक गायब हो गई, पता ही नहीं चला उन बून्दों का।

सच ही आदमी की धन, सम्पत्ति, शक्ति, सामर्थ्य, औस की बून्दों के समान चंचल है, क्षण भंगुर है · ··

मनुष्य उन पर अभिमान करता है पर वह यह नहीं सोचता कि समय का एक झोंका आयेगा और इन सबको सूखा जायेगा।

न पाण्डवों का विशाल साम्राज्य टिक सका, न रावण की सोने की लंका बच सकी, न मुगलों के शाही ठाट बाट, और न अंग्रेजों का सात समुद्रों पार तक का साम्राज्य आज रहा। सब कुछ औंस बिन्दु की तरह चमक चमक कर मिट्टी में मिल गये।

औ-औदासिन्य-मैं भोग सामग्रीओं पर भरत की तरह 'औदासिन्य' रखूँ।

औदासिन्य—भगवान् आदिनाथ ने अपने उपदेश में महारंभी और महापरिग्रह को नरक का कारण बताया, यह सुन कर वहाँ बैठे हुए एक सुनार ने सोचा—मेरे पास तो थोड़ी सी पूंजी है, मैं तो अल्पारंभी और अल्प परिग्रही ही हूँ......भरत जैसे चक्रवर्ती सम्राट जरूर महारम्भी, महापरिग्रही हैं......फिर विचारा-भगवान् से पूंछ कर निर्णय ही करलूं और भगवान् ने जब इसका उत्तर दिया कि भरत अल्प आरम्भी और अल्प परिग्रही हैं......तुम महारम्भी और महापरिग्रही हो। बस ! सुनते ही सुनार सन्न रह गया, सोचा—यह तो 'पक्षपात' है।

भरत इस भाव को ताड़ गये, सुनार को बुलाकर कहा—यह तेल से लबालब भरा कटोरा है, इसे हथेली पर धर कर सारे नगर का चक्कर लगा कर आओ। याद रखना अगर कहीं एक बूंद भी गिर पड़ी तो तुम्हारे पीछे पीछे चलने वाले ये सिपाही वहीं पर तुम्हारी गर्दन उड़ा देंगे।

सुनार का कलेजा कांप उठा किन्तु चक्रवर्ती की आज्ञा का तो पालन करना ही पड़ता। बाजार की गली गली में घूम फिर कर सिपाहियों के साथ भरत के समक्ष उपस्थित हुआ। भरत ने पूछा—नगर के बाजारों में घूम आया ?

सुनार—हाँ घूम आया।

भरत—इस कटोरे से तेल तो नहीं गिरा ?

सुनार—गिरे कैसे ? मौत तो पीछे पीछे चल रही थी।

भरत—नगर के बाजारों में क्या देखा ?

सुनार—कुछ भी नहीं, देखता कैसे ? मुझे तो मृत्यु का भय लग रहा था।

भरत—कुछ समझे या नहीं ?

सुनार—नहीं, कुछ भी समझ में नहीं आया।

भरत—इसी तरह मैं संसार में रहता हूँ। संसार के सुख वैभव को एक बाजार की तरह मानता हूँ। इसके बीच रहता हुआ भी कटोरे की तरह अपनी आत्मा का ही ध्यान रखता हूँ। मुझे परलोक का भय है, राज्य पर मुझे कोई आशक्ति नहीं, इसे एक बन्धन मानता हूँ इसलिए मैं अल्प परिग्रही हूँ। तुम्हारे पास सम्पत्ति थोड़ी है, लालसा बहुत है, अनन्त है, इसलिये महापरिग्रही हो।

भरत की बात सुनकर—सुनार की समझ में आ गई भगवान् की बात........।

वे ही भरतजी एक दिन काँच के महलों में बैठे बैठे अपने हाथ में अंगूठी न देख कर विचार करते हैं, यह शरीर पौद्गलिक है, इसकी सुन्दरता भी पुद्गलों से ही है। मेरी आत्मा की सुन्दरता तो मेरे आत्मिक गुणों से है। बस इसी पुद्गल की निस्सारता पर विचार करते करते इतने शुद्ध भावों में बढ़े कि शीश महल में बैठे बैठे ही कर्म क्षय करके केवल ज्ञानी बन गये।

(१४)

अं-अन्जना—'मैं अन्जना की तरह हरेक परिस्थिति में अपने को सम्भाले रखूँ।"

अन्जना—राजा महेन्द्र की लाडली पुत्री थी अञ्जना। प्रह्लाद राजा के पुत्र पवन कुमारजी के साथ अञ्जना का विवाह हुआ, बड़ी धूमधाम व आनन्द उत्साह से।

विवाह से पूर्व एक दिन वह महलों में बैठी अपनी प्रिय सखी बसन्तमाला से बातचीत कर रही थी कि विद्युत्प्रभ नाम के किसी राजकुमार के सदाचार व संयम की बात चल पड़ी, अञ्जना ने उसकी प्रशंसा की; अज्ञातरूप में पवनजी महलों के द्वार पर खड़े खड़े यह सब कुछ सुन रहे थे, चुपचाप। उनका खून बौखला उठा, मेरी पत्नी किसी अन्य की प्रशंसा कर रही है। बस! यह तो कुलटा है, वे तो उन्ही पैरों से लौट गये। विवाह के बाद भी इसी बहम के कारण वे कभी भी अञ्जना के द्वार पर नहीं आये। बहम का भूत जो कुछ न करे सो थोड़ा है। १२ वर्ष बीत गये, पवनजी का समय प्रायः शस्त्राभ्यास में जाता। एक बार कहीं उन्हें युद्ध के लिए जाना पड़ा। मार्ग में रात भर के लिए पड़ाव किया। वृक्ष पर एक चकवे चकवी का जोड़ा बैठा था, ज्योंही चकवा उड़ने को हुआ चकवी ने पंख फड़फड़ा कर उसे रोकना चाहा, चकवा उड़ गया बिचारी चकवी शिर धुन कर रह गई। यह रोमांचक घटना पवनजी के हृदय में अतीत की वेदनाओं को जगा गई, उन्हें याद आया—क्या बीतता होगा बेचारी अञ्जना पर? बारह बारह वर्ष से जिसको पति ने छोड़ रखा है। कितनी भयंकर होगी उसकी वेदना? कितना गहरा होगा उसका घाव? यह सोचते सोचते पवनजी का हृदय दुःख से भर गया, वे एकदम विचलित होगये अञ्जना की याद में..........।

अपने साथी को जगाया और विमान द्वारा रातोंरात अञ्जना के महलों में पहुँचे। सब कोई सो गये थे, पवन जी ने अञ्जना के द्वार खटखटाये...........। सखि बसंतमाला ने ज्यों ही पवन जी को देखा तो भय और हर्ष से हृदय भर गया, वह कुछ क्षण रुकी ....

पवन जी को विलम्ब सहन नहीं हो रहा रहा था, वे जल्दी से अन्दर चले गये—अञ्जना की दीन मुद्रा कुछ प्रसन्न थी, कुछ भयभीत भी थी। अपने कृत्यों पर क्षमा मांगने की :फुरसत कहाँ थी, अभी पवनजी को, ... आज पहली बार दिल खोलकर अञ्जना से मिले और थोड़ी देर ठहरकर अञ्जना को अपनी स्मृति में अंगुठी देकर उसी विमान से चले गये। प्रातःकाल युद्ध क्षेत्र में पहुँचना जो था।

× × × ×

पवनजी का यों आना और चले जाना किसी को मालूम नहीं था। अञ्जना जब गर्भवती हुई तो सासु ने वहम उठाया पुत्र ने १२ वर्ष से इसका त्याग कर रखा है फिर यह कैसे हुआ? अञ्जना ने सब वृतान्त सुनाया अंगुठी दिखाई, पर उनके मन विश्वास नहीं आया। बड़ा कुहराम मचगया और अन्त में अञ्जना के शिर कलंक का टीका लगा कर घर से, और देश से भी निकाल दिया—अकेली को और वह भी गर्भवती को ....

अञ्जना पीहर गई। माता पिता और भाईयों ने भी इसे व्यभिचारिणी समझकर दुत्कार दिया। शहर वालों ने इसको

एक घूंट पानी भी नहीं पिलाया। सिर्फ इसी बात पर कि यह व्यभिचारिणी है—

भूखी प्यासी अञ्जना निष्कासित होकर अकेली जंगल की ओर चल पड़ी ·······सांय सांय करते घोर जंगल में एक मात्र सहारा था—इसका सत्य और सदाचार। वह अपने आप में सत्य और सतीत्व की जीवत मूर्ति थी·········· निर्भय जंगल में घूम रही थीं।

एक दिन हनूपुर के शूरसेन नामक राजा (जो अञ्जना के मामा थे) ने जंगल में भटकती अंजना को देखा। यह दुर्घटना सुनकर बड़ा खिन्न हुआ और अंजना को अपने घर पर ले आया। बड़े आदर सत्कार से रहती। वहीं पर जगप्रसिद्ध भक्त वीर का जन्म हुआ जिसका नाम रखा गया—हनुमान।

इधर पवनजी जब युद्ध में विजय करके लौटे तो घर का यह विषैला वातावरण देखकर अत्यन्त दुःखी हुये। वे अंजना की खोज में चल पड़े। घूमते घूमते इधर हनूपुर में पहुँचते हैं और अंजना को लेकर अपने घर आ जाते हैं। पवनजी और अंजना ने संसार की स्वार्थभरी प्रवृत्तियों से क्षुब्ध होकर संसार त्याग कर मुनिव्रत ले लिया··········

धन्य है, सति अंजना को जिसने घोर संकट के समय भी अपने सत्यशील पर अडिग रहकर स्त्री समाज के सामने एक अद्भुत उदाहरण रखा।

अः—'अर्हन्नक'—'मैं अर्हन्नक की तरह सत्य पथ पर अडोल रहूँ।

अर्हन्नकः—पुराने जमाने में एक नामी व्यापारी था अरणक (अर्हन्नक)। भगवान् महावीर का वह श्रावक था। बड़ा सदाचारी और ईमानदार।

उस समय व्यापार के लिये अन्य देशों में जाना पड़ता था। जाने का मुख्य मार्ग था समुद्र। इसलिये 'समुद्रयात्रा' बहुत होती थी।

अरणक और उसके साथ पचासों व्यापारी समुद्र यात्रा पर चले। समुद्र के बीच में पहुँचे तो एक तूफान आया, नाव डग-मगाने लगी, और इतने में ही एक भयंकर राक्षस आया, जिसके हाथों में मनुष्य की हड्डियाँ, गले में मुण्डमाला और अट्टहास करता हुआ उस जहाज को रोक कर सामने खड़ा हो गया,........ लोगों के हृदय धक् धक् करने लग गये।

बोला–अरे! अरणक! तू तेरा धर्म छोड़ दे, तू कह दे तेरा धर्म कर्म सब झूंठा है। नहीं तो तेरे जहाज को डुबो देता हूँ· तुझे मार दूंगा।

अरणक निर्भय होकर चुपचाप बैठा रहा··· ···और मन ही मन भगवान् का स्मरण करने लगा··· ······।

राक्षस जहाज को दो अंगुलियों पर उठा कर आकाश में ले जाने लगा ... ...दूसरे व्यापारियों के होश हवाश उड़ गये ... ... अरणक को बहुत समझाया। "अरे! अरणकजी तुम धर्म छोड़ दो, झूठ मूठ ही कह दो कि धर्म छोड़ता हूँ।" अरणक ने कहा– क्या धर्म भी कभी छोड़ा जा सकता है। वह जीवन की सम्पत्ति है। यह है तभी जीवन है। इस प्रकार वह अपने सिद्धान्तों पर हिमालय की तरह डटा रहा ... ...

वह राक्षस भी अरणक की दृढ़ निष्ठा पर चकित रह गया; अन्त में हार कर वह अपना सुन्दर रूप बना कर अरणक के सामने आया और बार बार उसकी वंदना व प्रशंसा करता हुआ चला गया ... ...

(१६)

क–कमलावती–"मैं कमलावती की तरह सद् शिक्षा देने में कभी भी नहीं झिझकूँ।"

कमलावती—भृगु नाम का राज पुरहित था, घर में एक पत्नी और दो लाड़ले पुत्र, यह छोटा सा परिवार और विशाल धन सम्पत्ति उसके पास थी ... ...

माँ बाप ने पुत्रों के मन में एक हौआ (भय) पैदा कर दिया था कि–ये जैन साधु झोलियों में छूरी कैंची रखते हैं–बच्चों को पकड़ कर मार डालते हैं ......इसलिये हमेशा इनसे डरते रहना ....

एक दिन की बात दोनों बच्चे बगीचे में खेल रहे थे, इधर दो मुनियों को हाथ में झोली लिये आते देख कर घबरा कर भाग पड़े ··· मुनि भी उधर ही जा रहे थे मुनि को.. अपने पीछे पीछे आते देख कर बच्चे और भी घबड़ाये और आखिर एक वृक्ष पर चढ़ कर छुप गये।

मुनि एक महीने से तपस्या कर रहे थे, आज कहीं से पारणा करने के लिये भिक्षा लेकर आ रहे थे, साफ सुथरी जगह देख कर उसी वृक्ष के नीचे बैठ गये, झोली खोल कर धीमे धीमे भोजन करने लगे···· ···

बच्चों ने साहस करके ऊपर बैठे बैठे मुनि की झोली देखी तो न उसमें छुरी थी न कैंची, उनमें तो सिर्फ खाने पीने की चीजे थी, उनका मन शान्त हो गया, धीरे से नीचे उतर कर मुनि के पास आये ····ज्यों ज्यों बात चीत करने लगे त्यों त्यों हृदय आनन्द से भर रहा था। सचमुच उन्हे 'आत्म ज्ञान' हुआ और खुद भी साधु बन जाने को ठान कर माता पिता के पास आकर आज्ञा मॉगने लगे।

माता पिता तो अवाक् रह गये, सोचा जिस भय के कारण हमने इनमें साधुओं से दूर रहने का—'हौआ' पैदा किया था, वही आज इनको साधु बनने की प्रेरणा दे रहा है। बहुत सारे वाद-विवाद के बाद चारों ने साधु बनने का विचार कर लिया

धन की बड़ी बड़ी पेटियॉ राज भण्डार में आती देख कर रानी कमलावती ने इक्षुकार राजा से इसका कारण पूछा—

राजा—आज अपने राज पुरोहित दीक्षा ले रहे हैं उनके पीछे कोई नहीं है ······इसलिये यह धन राज भण्डार में जमा हो रहा है ·········

रानी का मन घृणा से भर गया, कहने लगी–जिसने अपना पसीना बहाकर यह धन कमाया है वह तो आज छोड़ रहा है और आप उसकी जूठन राज भण्डार में भर रहे हैं ? सोचिये।

आपसे तो पुरोहित ही अच्छा जो धन सम्पत्ति को ठुकरा कर जा रहा है और आप उस पर ललचा रहे है ? धन से अमर नहीं बनेगे।

रानी के बोल राजा के मन में चुभ गये और ऐसे चुभे कि संसार भर का धन उसके लिये धूल के बराबर हो गया····· ··· प्रबुद्ध होकर राजा और रानी दोनों ही भगवान् के शिष्य बन गये—

रानी ने अपने विवेक से राजा की अन्तर आँखें खोल दी—

(१७)

ख-खंधक-"मैं खन्धक की तरह चमड़ी छीलने वालों पर भी रोष नहीं करूँ।"

खन्धक—खंधक एक राजकुमार थे, उठती हुई जवानी में त्यागी साधु बन गये। देश विदेश में घूमते हुये वे एक बार अपनी बहन के राज्य में पहुँचे। भिक्षा के लिए घर घर पर घूमते हुये राजमहलों के नीचे से निकले तो ऊपर अटारी पर

बैठे राजा और रानी (मुनि की बहन) ने मुनि को देखा। रानी मुनि को पहचान नहीं सकी किन्तु भाई की याद आ गई। मेरा भाई भी इसी प्रकार घर घर पर भिक्षा माँगता होगा। रानी तो इन्हीं विचारों में खो गई, उदास होने लगी।

राजा ने सोचा—मेरी रानी तो इस साधु से प्रेम करती है, तभी मेरे से बात करती करती बीच ही में इसको देखने लग गई है। अच्छा हो इस साधु को ही मरवा दूं, फिर न रहेगा बॉस न बजेगी बॉसुरी।

राजा ने भंगी को बुलाया, कहा—इस साधु को पकड़ कर ले जाओ और इसकी खाल उतार के मेरे सामने हाजिर करो।

यह भयकर बात सुन कर बिचारा जल्लाद कांपने लग गया ··किन्तु वह तो नौकर था। मुनि पकड़ कर ले गया, 'श्मशान भूमि' मे और खाल उतारने के लिए राजा की आज्ञा मुनी को बताई ··· ··

मुनि न झेंपे, न घबराये—किन्तु अपने बहनोई की इस करतूत पर विस्मय में डूब गये ··फिर सोचा—मरना तो एक बार है ही, फिर घबरा कर भाग छूटना वीर का धर्म नहीं, मेरी आत्मा अमर है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, बस विचार करते करते मुनि खंधक ध्यान लगा कर खड़े हो गये।

जल्लाद ने कांपते हाथों से खाल उतारी और लाकर राजा के सामने धरदी।

राजा—मुनि ने कोई शाप दिया है?

जल्लाद—उसने तो चूं भी नहीं किया, बड़ा धीर, वीर, क्षमाशील था।

राजा के रोंगटे खड़े हो गये, मुनि की खाल देख कर अपने कृत्य पर आँसू बहाने लगा ......

रानी ने इसका भेद जाना तो राजा के सामने फूट फूट कर रोने लगी, कहा कि मैंने तो इसे भाई की नजरों से देखा, कि मेरा भाई भी इसी तरह भिक्षा करता होगा, किन्तु आपने भयंकर अन्याय कर दिया।

राजा ने इसका पता लगाया तो मालूम हुआ कि "ये मुनि ही रानी के भाई थे।"

अब तो दोनों के दुःख का कोई आर पार न रहा। सच है—"बिना विचारें सो करें जो पीछे पिछताय।"

मुनि ने क्षमा का ऊंचा आदर्श रख कर संसार को सहनशीलता के विषय में अद्भुत मार्ग दिखा दिया।

(१८)

ग-गजसुकुमार—"मैं अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गजसुकुमार की तरह अँगारों से भी खेल लूँ।"

गजसुकुमार—गजसुकुमार-राजा वासुदेव के पुत्र और श्री कृष्ण के छोटे भाई थे। बड़े ही सुन्दर, सुकुमार और होनहार थे। सोमिल नाम के धनाढ्य ब्राह्मण की कन्या से उनका विवाह सम्बन्ध होना निश्चित हुआ।

भगवान नेमिनाथ द्वारका में पधारे, राजा, रानी, राजकुमार दर्शनों के लिए गये, गजसुकुमार पर भगवान की वाणी का असर हुआ. संसार को छोड़ कर मुक्ति की ओर बढ़ने की लगन लगी ....बहुत आग्रह के बाद माता देवकी ने अपने पुत्र को संयम लेने की आज्ञा दी और अन्तिम सीख के रूप कहा—"तुम अपने मार्ग पर सिंह की तरह बढ़ते जाना, बार बार जन्म-मरण करके अनेकों मातायें मत करना।" गजसुकुमार खुशी खुशी माता की सीख लेकर भगवान् के पास दीक्षित हुये और उसी दिन उसी समय कड़ी तपस्या करने के लिए भगवान् को पूछ कर शमशान में चले गये...... लगभग नौ वर्ष के होंगे। लेकिन उनका मनोबल लाखों वीरों को जीतने वाले महावीरों से भी अधिक था।

सोमिल कहीं घूमता घामता उसी शमशान के पास से गुजरा, अपने होने वाले जंवाई को इस तरह चुपचाप साधु बन कर तपस्या करते देख कर आग बबूला हो गया। अपने अपमान का बदला लेने के लिये, आव देखा न ताव, गीली मिट्टी लेकर मुनि के सिर पर पाल (किनार) बनाई... फिर किसी जलती हुई चिता में से अंगारे उठा कर लाया और मुनि के शिर पर डाल कर नौ दो ग्यारह हो गया।

मुनि का शिर खिचड़ी की तरह खदबद करने लगा शरीर जलने लगा ... भयंकर कष्ट की इन घड़ियों में भी मुनि अपने ध्यान में अडोल खड़े खड़े सोचते रहे, ससुर ने तो मेरे शिर पर एक प्रकार की पगड़ी बांधी है। मुक्ति रुप वधू को वरने के लिये यह मेरी सहायता कर रहा है। और इन्हीं भावों में

विचरते मुनि इस प्रकार अङ्गारों से खेलते खेलते, क्षमा का अत्युत्तम आदर्श रखकर, अपने अन्तिम लक्ष्य को पाकर भव बन्धन से मुक्त हो गये।

(१६)

घ-घमण्ड-"घमण्ड के कारण ही दुर्योधन का पतन हुआ इसे न भूलूँ"

घमण्ड :—पतन का रास्ता-फुटबाल जब फूल जाती है तो इधर उधर ठोकरे खाती है। क्योंकि फूलना, ऐठना, अभिमान करना हमेशा ही दुःख का कारण होता है।

फूल न अपनी जीत पर, फूलें ते बदहाल,
ठोकर खाती है सदा, फूलें तें फुटबाल।

दुर्योधन जो अभिमान के नशे में चूर हो रहा था, पाण्डवों को १२ वर्ष का बनवास पूरा करके आने पर जब उन्हें बसाने के लिये श्री कृष्ण ने दुर्योधन से एक एक गांव मांगा। तो वह अकड़ कर बोला—

सूच्यग्रेण, सुतीक्ष्णेन, यासाभिद्येत मेदिनी,
तदर्ध नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशवा।

सुई की नोंक टिके उससे आधी जमीन भी मैं बिना युद्ध के नहीं दूंगा······फल स्वरूप भयंकर युद्ध मचा, खून की नदिये बही। और एक दिन वही दुर्योधन अपनी जान बचाने के लिये

तालाब में छुपा और भीम ने निकाल कर अपनी गदा से उसके टुकड़े कर दिये। इसीलिये यह याद रखना चाहिये—घमण्ड पतन का कारण है।

(२०)

स—मैतार्य—"मैं मैतार्य के समान स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरे के दुःख का कारण नहीं बनूँ।"

मैतार्य—मैतार्य एक धनवान सेठ के घर जन्मा, चंडाल के घर पला पुसा और राजा श्रेणिक की राजकुमारी के साथ विवाह हुआ ... फिर भगवान महावीर का शिष्य बनकर 'मुनि मैतार्य' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मुनि मेतार्य भिक्षा के लिये एक स्वर्णकार के घर गये, सुनार राजा श्रेणिक के घर से आये हुये 'सोने के जव' घड़ रहा था। बीच ही में आहार पानी की तलाश के लिये उठकर अन्दर गया, पीछे से एक क्रौंच पक्षी उन्हें दाना समझकर निगल गया। स्वर्णकार बाहर आया, 'स्वर्ण यव' नहीं देखे तो बस काटो तो खून नहीं. समझा मुनि ने चुरा लिये हैं। मुनि से पूछा—यव कहाँ गये? पक्षी की हिंसा न हो जाए इसलिये मुनि मौन रहे। स्वर्णकार का पारा चढ़ गया, झुंझलाकर एक गीला चमड़ा लेकर मुनि के शिर पर लपेट दिया, बोला—बस! भुगत अपनी चोरी का दण्ड!!

मुनि मेतार्य शान्त खड़े रहे, चमड़ा ज्यों ज्यों सूखता गया मुनि के शरीर में अपार पीड़ा होने लगी। स्वर्णकार पर उन्हें

तिल भर भी क्रोध नहीं आया वे तो अपनी आत्मा की शुद्धि कर रहे थे।..........राग द्वेष की गांठे खोल रहे थे और वहीं पर खड़े खड़े केवल ज्ञान पाकर शरीर से मुक्त हो, मुक्ति के मेहमान बन गये।

च—चन्दनबाला—"मैं चन्दनबाला के समान धैर्य-शील बनू।"

चन्दनबाला—चंपापुर का नीति निष्ठ राजा था—दधिवाहन! रानी का नाम था धारणी, उनके एक सुशील और सुन्दर कन्या थी—चन्दन बाला भगवान् महावीर के मौसी की पुत्री बहन होती थी......... इसका बचपन आनन्द और उत्साह में से गुजर कर जवानी के द्वार पर आ रहा था ....एक बार .... शतानीक नाम के राजा ने अचानक ही चम्पापुर पर आक्रमण कर दिया .... राजा तो किसी विचार में पड़कर जंगल की ओर चल पड़ा। पीछे से सैनाएं शहर में घुस गई, लूट खसोट मच गई। एक सैनिक राजमहल मे पहुँचा। वहाँ इन दोनों अप्सरा सी माँ बेटियों को देख कर बस इन्हीं को उठाकर ले चला· ....

यह रानी और राजकुमारी असहाय एवं अपहृता होकर आज किसी सैनिक के द्वारा बार बार छेड़ी जा रही थी—जब वह बलात्कार करने लगा तो रानी ने कड़ी फटकार लगाई। किन्तु जब वासना का कीड़ा इन फटकारों को अनसुनी कर आगे बढ़ा तो

रानी का सतीत्व तेज चमक उठा—जीभ को हाथ से खेंचो और देखते देखते प्राणों की बाजी लगा गई।

सैनिक तो सन्न रह गया। चन्दना की आँखों में टपटप आँसुओं की झड़ी बरसने लगी। सैनिक घबराया, कहीं यह भी माँ की तरह ही मर न जाए? उसका हृदय ही बदल गया, चन्दना को धीरज बंधाता हुआ बोला—घबराओ मत बहन। मैं तुम्हारा भाई हूँ। तुम्हारी रक्षा करना मेरा धर्म है।

चन्दनबाला की जान में जान आ गई, दुःख सुख के इन दिनों को अब इसी भाई की छाया में बिताने के लिये वह उसके घर पर आ गई। भाई, भाभी और चन्दना एक घर में साथ साथ रहने लगे।

सैनिक की पत्नी के मन में वहम का भूत सवार हुआ। सोचा यह मुझे छोड़ कर इसे अपनी पत्नी बनाने की तैयारी में है, अतः पानी से पहले ही पाल बाँध देना चाहिये। और इधर मौका भी ऐसा मिला कि सैनिक किसी कार्यवश बाहर गया हुआ था। उसने पीछे से चन्दना को एक वेश्या के हाथ बेच दिया—

वेश्या के बहुत कुछ डराने धमकाने पर भी जब वह वेश्या का धन्धा करने के लिये बिल्कुल तैयार नहीं हुई तो वेश्या ने भी इसे बाजार में लाकर 'नीलाम' पर बोली बोल दी।

इस सुकुमार कन्या को इस प्रकार नीलाम होते देख कर एक धनावा नाम के सेठ का हृदय करुणा से पिघल गया। उसे खरीद कर अपनी पुत्री के रूप में बड़े प्रेम से रखने लगा।

चन्दना के दुःख के दिन और लम्बे हो रहे थे, वही सैनिक की पत्नी वाला बह्म सेठ की स्त्री 'मूला' के शिर पर सवार हुआ और एक दिन सेठ को बाहर गया हुआ देख कर चन्दना के हाथों में हथकड़ी और बेडियें पहना कर शिर मूंड कर भूमिगृह में बन्द करके अपने मैके (पीहर) चली गई।

भूखी प्यासी चन्दना को भूमिगृह में पड़े पड़े तीन दिन बीत गये। चौथे दिन सेठ आया, घर को इधर उधर सम्हालने पर कोई नहीं मिला, तब चन्दना को आवाज दी तो धीमी सी एक आवाज भूमिगृह से आई। सेठ ने बाहर जाली में से देखा तो चन्दना अन्दर बैठी थी। उसे बाहर निकाल कर सब स्थितियां पूछी वह तीन दिन की भूखी थी, खाने के लिये बाहर कुछ था नहीं। एक और छाज के कोने में सूखे से उड़द के बाकले (पकाये हुये दाने) पड़े थे। सेठ चन्दना को खाने के लिये देकर बेडिये तुड़वाने के लिये किसी सुनार को बुलाने गया।

× × × ×

भगवान् महावीर अपने साधना काल में घोर तपस्या कर रहे थे, एक विचित्र प्रतिज्ञा उन्होंने की–(१)–राजा की पुत्री हो (२) खरीदी हुई हो (३,४) दोनों हाथों में हथकडियें हो (५,६) दोनों पैरों में बेड़ियें हो (७) शिर मूंडा हुआ हो (८) तीन दिन की भूखी हो (९) रो रही हो, (१०) दोपहर दिन चढ़ने के बाद मिले (११) जिसका एक पैर देहली के अन्दर हो, एक बाहर हो। (१२) उसके पास उड़द के बाकले हो। (१३) जो एक छाज के

कोने में पड़े हो। ऐसा संयोग मिले तो भोजन करना। इन १३ बोलों का अभिग्रह लिये भगवान् महावीर को घूमते हुये ५ मास २५ दिन हो गये। आज भगवान् चन्दना के घर आ रहे थे। चन्दना तो इस महा योगीराज को देख कर बांसों उछलने लगी– दुःख की अन्धेरी रात में यह सुख का सूर्योदय हो रहा था।

किन्तु भगवान् तो लौट गये क्योंकि उसकी आंखों में आँसू नहीं थे। उनकी प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो रही थी–प्रभु को फिरते देख चन्दना तो अपने भाग पर फूट फूट कर रोने लगी–हाय! इन दुःख के दिनों में प्रभु ने भी पीठ दिखा दी। तभी भगवान् ने मुड़ कर देखा उसकी आँखें तर बतर हो रही है—भिक्षा के लिये पधारे। चन्दना ने अत्यन्त हर्ष से भगवान् को वह भिक्षा दी।

बस! इतने ही में तो रत्नों की वृष्टि होने लगी। देव दुन्दुभी बजने लगी–हथकड़िये और बेड़िये बहुमूल्य आभूषण बन गये, सुगन्धी फैल गई। सब लोग दौड़े दौड़े आये, सेठ भी आया, सबने चन्दना के भाग्य को सराहा। अब तो चन्दना सबके लिये परमपूज्य, श्रद्धेया बन गई।

भगवान महावीर ने केवल ज्ञान प्राप्त करके धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया, तब चन्दनबाला उनकी प्रथम शिष्या और ३६ हजार साध्वियों में प्रमुख बनी ....

धन्य है महा सती चन्दनबाला को! जो दुःखों के सागर को धैर्य और साहस के साथ तर कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती गई।

(२२)

छ—छत्र "मैं छत्र की तरह स्वयं धूप सहकर भी दुनियां के लिये छाया करता रहूँ।"

छत्र—दुनिया उसको पूजती है जो उसके काम आता है। निस्वार्थ भाव से संसार का उपकार करने वाले ही महापुरुष कहलाते हैं, और उन्हें ही संसार युग युगांत तक याद करता है।

यह देखो छत्ता जो सब के शिर पर चढ़ा रहता है। क्यों? यही कि यह धूप छाँह, आँधी, वर्षा, सब कुछ सह कर भी दुनियां की रक्षा करता है। इसीलिये संसार इसे अपने मस्तक पर करके चलता है।................

जो निस्वार्थ भाव से परोपकारी होता है संसार उसे छत्र की तरह मानता है।

(२३)

ज—जम्बू कुमार "मैं जम्बू कुमार की तरह प्राप्त हुई सम्पत्ति को ठुकरा कर सच्चा त्यागी बनूँ।"

जम्बू कुमार—'होनहार बिरवान के होत चिकने पात'—इस कहावत के अनुसार जम्बू कुमार बचपन से ही शान्त व विचार मग्न रहते। घर में अपार धन था... माँ बाप का प्यार था, परन्तु जम्बू कुमार के लिये यह सब कुछ भी नहीं थे। बार बार वह इनको छोड़ कर साधु बनने की बात करता।

माता पिता के अधिक स्नेह एवं आग्रह के कारण जम्बू कुमार को आठ शादियाँ करने के लिये स्वीकार होना पड़ा, किन्तु इस शर्त पर कि दूसरे दिन ही साधु बन जाऊंगा।

बड़ी धूम धाम से विवाह हो गया। आठ देव कन्या सी सुन्दर स्त्रिये और ९९ करोड़ का दहेज जम्बू कुमार के घर में जगमग कर रहा था ... .।

शहद पर मक्खियें आती हैं, धन पर चोर आते हैं। इसी के अनुसार ५०० चोरों के साथ उनका प्रमुख 'प्रभव कुमार' जम्बू कुमार के घर चोरी करने आये। जब धन की गठरिये बांध कर उठाने लगे तो ५०० के हाथ चिपक गये ... । हिल भी नहीं सके . . . ।

विचारा प्रभव घबराया, ऐसा शक्तिशाली कौन है ? बस इसी खोज में घूमता घूमता ऊपर महलों में आया तो देखता है कि अन्दर रंगमहल में धर्म चर्चा हो रही है। एक ओर आठ अप्सरा सी स्त्रिये पति को संसार में फंसाये रखने की चेष्टा कर रही है, दूसरी ओर अकेला पति उन आठों को समझा कर वैराग्य की ओर मोड़ रहा है—आखिर जम्बू अपने प्रयास में सफल हुये। आठों प्रातः काल उनके साथ दीक्षित होने को तैयार हो गई।

इधर प्रभव भी उनकी बातें सुनकर ऐसा समझा कि वह भी उनके साथ दीक्षित होने के विचार से जम्बू के चरणों में पहुँच कर अपना आत्म निवेदन करने लगा।

जम्बू कुमार की वाणी का ऐसा प्रभाव हुआ कि प्रातः ५०० तो चोर, आठ पत्नियें, १६ उनके माता पिता, १ जम्बू कुमार, दो उनके माता पिता, ये ५२७ व्यक्ति एक साथ श्री सुधर्मा स्वामी के पास संसार के मोह बंधनों को तोड़ कर दीक्षित हुये।

जम्बू कुमार के इस अद्भुत वैराग्य के सामने संसार हमेशा नत मस्तक रहेगा ....।

झ–झूठ 'मैं झूठ को जहर के समान समझूँ।'

झूठ—झूठ एक ऐसा जहर है जो मनुष्य के विश्वास प्रतिष्ठा सन्मान का नाश कर देता है। भगवान् महावीर ने कहा है–"अविस्सासोय भूयाणं, तम्हामोसं विवज्जए" असत्यवादी का कहीं भी, कोई भी, विश्वास नहीं करता। अपना विश्वास और सम्मान चाहने वाले को सबसे पहले झूठ का त्याग करना चाहिये। बोलने से पहले यह तोल लेना चाहिये कि मेरे वचन से क्या लाभ होगा? क्या नुकसान होगा? अगर बिना बिचारे कुछ बोल दिया तो पीछे पश्चाताप करना पड़ता है।

आज संसार धर्म पुत्र को याद करता है, सत्यवादी हरिश्चन्द्र को याद करता है...... क्योंकि उन्होंने सत्य के लिये अपने प्राणों तक का मोह छोड़ दिया। इसलिये उत्थान चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को झूठ को जहर के समान मान कर छोड़ देना चाहिये।

त्र (म)-मोहजीत—मैं मोहजीत राजा की तरह हर समय आत्म भाव में रमण करूँ ।

मोहजीत—एक देवता ने इन्द्र महाराज के मुंह से ऐसा सुना कि मोहजीत राजा का परिवार बड़ा निर्मोही है। देवता इस बात की परीक्षा करने के लिये आया। राजकुमार को कहीं छुपा कर योगी का वेश बनाए शहर में घूमने लगा। इधर राजकुमार के न मिलने पर नौकरों व दासियों ने खोज आरम्भ की। एक दासी घूमती घामती योगी के पास आई। राजकुमार की बात चलने पर योगी ने रोनी सी मूरत बना कर कहा—हाय! हाय!! आज राजकुमार को तो मेरे मठ के सामने एक सिंह ने फाड़ डाला। यों कह कर योगी रोने लग गया।

दासी—योगी तुम क्यों रो रहे हो? जो जन्मा है उसे मरना होगा ही, यह तो तुम जानते हो, फिर मरने पर रोना तो उलटी मूर्खता है।

योगी ने सोचा इसके मोह नहीं है। राजा को जाकर सूचना दूं, वह तो रोयेगा ही। बस! तत्काल भरी राज सभा में जाकर यह बात कह कर रोने लग गया।

राजा—योगी तुम भूल रहे हो। संसार के संबन्ध नाशमान है। जन्म मरण का चक्र चलता ही रहता है, इसमें दुःख की क्या बात है? हमारा इतना ही सम्बन्ध था।

योगी की दाल नहीं गली, वह रानी के पास आकर गिड़-गिड़ाता हुआ वही बात दोहराने लगा। रानी ने सुनकर कहा—योगी तुम योग की रीत नहीं जानते हो। संसार तो एक बाजार है जिसमें इधर उधर से आकर सब मिल गये हैं। बिछुड़ना तो सबको है ही, जितने दिन मिलकर रहते हैं, यही बड़ी बात है। योगी के मुंह में लड्डुसा आ गया। आखिर कुमार की पत्नी के पास आया और वही बात कही-पुत्री ! तुम्हारे पति को तो सिंह ने मार डाला। वह बोली—मेरा पति तो मेरे अन्तर में बैठा है उसको कौन मार सकता है। जो सांसारिक सम्बन्ध हैं वे तो हमारे बनाये हुये हैं। एक दिन तो मिटेंगे ही इसमें दु.ख की क्या बात है। योगी तो सन्न रह गया, सबके सब निर्मोही एवं आत्म ज्ञानी है। इन्द्र की बात सत्य पाकर कुमार को प्रकट करके अपने देव रूप में झगमग करता हुआ राजा के चरणों में नत मस्तक हो गया। राजा को विविध भेंट देकर वह अपने स्थान को चला गया। यही सोचता हुआ—

"मोहजीत राजातणो निर्मोही परिवार"

आत्म ज्ञान का सार यही है, सुख दुःख में समभाव रहे।

(२६)

८—टीका टिप्पणी:—"मैं किसी की टीका टिप्पणी न करूँ, अपने अवगुणों को ही देखूँ।"

टीका टिप्पणी—मनुष्य का स्वभाव भी कुछ ऐसा है कि

उसे दूसरों के अवगुण देखने में, उनकी चर्चा करने में वड़ा रस आता है, अपने अवगुण, अपनी बुराईयाँ देखना वहुत कठिन है, और अगर दीख भी जाती है तो उन्हें प्रकट नहीं होने देने का प्रयत्न करता है। यही उसकी सवसे वड़ी कमजोरी है—कवीर ने कहा है—

दोंप पराये देख के चले हंसत हंसत,

अपने याद न आवहि जाका आदि न अन्त।

मनुष्य को दूर्वीन नहीं, दर्पण वनना चाहिये। दुनियाँ की बुराईयाँ न देखकर अपनी ही देखनी चाहिये। दुनियाँ की टीका टिप्पणी करने से अपना समय नष्ट होता है। सन्मान नष्ट होता है और सद्‌गुण भी नष्ट होते हैं। अपना निरीक्षण करने से अपना सुधार होता है। जग में सत्कार होता है और सद्‌गुण वढ़ते हैं। इसीलिये आचार्य श्री तुलसी ने कहा है—"रात दिन अपने से अपना हो निरीक्षण लाज़मी"

भगवान महावीर ने कहा है—

संपिक्खए अप्पग मप्पएणं—

अपने से ही अपने को देखो।

छत्र एक्सरे वन अरे! ले तूं अपना चित्र,

व्यर्थ कैमरे वनन में, क्या मिलता है मित्र!

(२७)

ट—ठगी—मैं कभी भी ठगी न करूँ।

ठगी—मन में और मुंह पर और, तथा व्यवहार में और इसी का नाम है ठगाई, वंचना। जो जैसा कहता वैसा नहीं करता है उसको दुनियाँ ठग कहती है, उसका विश्वास नहीं होता, सब उससे सावधान रहते हैं।

भले ही कोई किसी को धोखा देकर एक बार अपना उल्लू सीधा करले, किन्तु दुबारा कोई भी उसकी फांकी में नही आना चाहता। इसलिये कहा है—

फेर न होवे कपट से, जो कीजे व्यवहार,
जैसे हांडी काठ की, चढ़े न दूजी बार।

धोखा धड़ी मनुष्य के सन्मान की शत्रु है, इसलिये हमेशा ही बचते रहकर प्रामाणिकता रखनी चाहिये।

(२८)

ड-डर—"मैं "डर तो पाप का" इस पाठ को हर वक्त याद रखूँ।"

डर—जो मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करता है, अपने प्रति और संसार के प्रति सच्चा रहता है उसे कभी किसी से डर नहीं रहता। जो पाप करता है; अन्याय करता है, उसके हृदय में हमेशा धड़कन रहती है; भय बना रहता है। पाप से बचने वाले को कभी कोई भय नहीं। इसलिए—

अगर निर्भय रहना चाहते हो, तो पाप से भय रखो, उससे बचते रहो।

ढ-ढढण ऋषि-'मैं ढंढण मुनि की तरह सदा दृढ़ प्रतिज्ञ रहूँ'।

ढंढण ऋषि—महाराज श्री कृष्ण के पुत्र थे ढंढण कुमार। उन्होंने भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा लेकर विविध प्रकार की तपस्याये की। उनके एक प्रतिज्ञा थी, मुझे मेरी लब्धि (भाग्य) से जो भिक्षा मिलेगी उसी का उपयोग करूंगा अन्य का नहीं।

किन्तु संयोग ऐसा मिलता कि भिक्षा के लिए जाते और खाली ही लौट आते। कहीं भी शुद्ध भिक्षा नहीं मिलती, तब इनके तपस्या होती जाती। इसी प्रकार छः महीने बीत गये। कहीं भिक्षा न मिलने से; प्रतिज्ञा करने के बाद आज तक भूखे पेट ही थे। श्री कृष्णचन्द्र भगवान नेमिनाथ के दर्शन करने को आये। उपदेश सुनने के बाद एक प्रश्न किया—आपके समस्त साधुओं में उत्कृष्ट तपस्या करने वाला साधु वर्तमान में कौन है?

भगवान्—ढंढण मुनि जो प्रतिज्ञा के कारण छै मास से भूखे है।

श्री कृष्ण—अभी कहाँ है?

भगवान्—नगर में जाते समय तुम्हें मार्ग में भिक्षा के लिए फिरते मिलेंगे।

श्री कृष्ण, भगवान् को वंदना करके लौटे, तो मार्ग में इस घोर तपस्वी मुनि को देख कर वाहन से नीचे उतरे और बड़ी

भक्ति से वंदना करने लगे। वासुदेव को यूं रास्ते चलते मुनि की इतनी भक्ति से वंदना करते देख कर पास में रहने वाले एक व्यक्ति ने सोचा—यह साधु अवश्य ही महान् है। जिसको श्री कृष्ण वासुदेव यों नमस्कार कर रहे हैं, झट से वह नीचे आया और मुनि को भिक्षा के लिए अपने घर पर ले गया। बड़ी भक्ति से मुनि को मोदक बहराये।

मुनि ने सोचा आज मेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल आहार मिला है, वे भगवान् के पास आये। किन्तु भगवान् ने तो इस बात का भेद खोल दिया। कहा—यह तेरी लब्धि से नहीं अपितु श्री कृष्ण की लब्धि से मिला है। दाता ने उनकी वंदना को देख कर तुझे दिया है। मुनि ने सोचा "तब तो यह मेरे लिए योग्य नहीं है आज तो भगवान् ने ही मेरी प्रतिज्ञा भंग होते होते रक्षा कर दी;" इन्हीं भावों के साथ साथ मुनि अपने पुराने किये हुए कर्मों की निन्दा करते करते इतने उच्च और विशुद्ध भावों में चढ़े कि मुनिराज को वहीं बैठे बैठे केवल ज्ञान हो गया, देवताओं के झुण्ड के झुण्ड केवल महोत्सव करने धरती पर आने लगे।

ढंढण मुनि की इस दृढ़ प्रतिज्ञा पढ़ने वाले आज भी चकित रह जाते हैं।

(३०)

ण (न)—नन्दीषेण की तरह सेवा में किसी भी प्रकार की कामना व घृणा नहीं रखूँ।

नन्दीषेण—घोर जंगल में एक बालक आत्म हत्या करने के लिए बार बार इधर उधर भयभीत दृष्टि से देख रहा था। अचानक एक साधु ने उसे देख लिया। मुनि पास में आये और बड़े वात्सल्य से उसकी इस चेष्टा का कारण पूछा, बालक गिड़गिड़ाता हुआ बोला—मुझे मरने दो, रोको मत, संसार में मेरा कोई सहारा नहीं है, मेरे लिए चारों ओर दुःख ही दुःख भरा हुआ है। इससे छुटकारा पाने के लिए मुझे मरने दो। मुनि ने कहा—मरने के बाद आगे भी यदि दु.ख ही मिला तो फिर क्या करोगे ? अगले जन्म में भी मरना पड़ेगा और इस प्रकार तुम्हारे अनेक जीवनों मे जन्मो और मरो, इस इतने के सिवा और क्या काम रहेगा।

बालक की आँखे खुल गई। बोला—गुरुदेव ! दुःख से छुटकारा पाने का सही मार्ग बताओ। मुनि ने उपदेश दिया और वह भी मुनि के साथ साथ आत्म साधना के पथ पर बढ़ गया। उसका नाम नंदीषेण था।

मुनि बनने के बाद नन्दीषेण तपस्या व सेवा में जी जान से लग गये। इनकी सेवा की महिमा इतनी बढ़ी कि इन्द्र महाराज ने अपनी देव सभा में इनकी सेवा वृत्ति की प्रशंसा की, इसे सुन कर दो देवता परीक्षा करने के लिए मुनि वेष बना कर आये।

नन्दीषेण तब दो दिन के उपवास का पारणा करने बैठे ही थे कि अचानक एक मुनि आये और गरज पड़े—"अरे ओ !

तू सेवा की डींगे हाक रहा है, देखता नहीं वह मुनि जंगल में कब का पड़ा है, उसको यहाँ लाना है ?"

नन्दीषेण बिना कुछ खाये ही चल पड़े, जंगल में जाकर मुनि की सेवा में उपस्थित हुये। मुनि ने दस बीस गालियाँ निकाली, किन्तु नन्दीषेण चुपचाप उनकी सेवा में लगे रहे। उनसे चला नहीं गया तो नन्दीषेण ने ग्लान मुनि को अपने कन्धों पर बिठलाया। थोड़ी दूर गये कि मुनि ने मल मूत्र से नन्दीषेण के शरीर को भर दिया, बड़ी दुर्गन्ध आ रही थी और ऊपर से मुनि गालियों की वर्षा कर रहे थे, किन्तु नन्दीषेण के मन में कुछ भी नहीं आया, वह उसी शान्ति और उत्साह के साथ सेवा में संलग्न चले आ रहे थे। स्थान पर आकर ज्यों ही मुनि को नीचे उतारा तो न मुनि थे; न मलमूत्र ! इतने ही में दो दिव्य ज्योतियाँ मुनि के सामने आई और बराबर मुनि की अद्भुत सेवा भावना की प्रशंसा करती हुई स्वर्ग की ओर चली गई। नन्दीषेण की सेवा वृत्ति सचमुच ही अनुकरणीय है जिसमें न कोई भेदभाव था, न किसी प्रकार की घृणा व कामना थी। यह अद्भुत, व निष्काम सेवा संसार के सामने अनूठा आदर्श है।

(३१)

त—तुलसि गणि—मैं तुलसी गणि की तरह विरोध को विनोद से जीतूं।

तुलसीगणि— तुलसी गणि तेरापन्थ के नवम् आचार्य है। इनका जन्म संवत् १९७१ कार्तिक शुक्ला २ लांडनू के झूमरमलजी

खटेड़ के घर में हुआ। ग्यारह वर्ष की कुमार अवस्था में ही आप अष्टमाचार्य कालूगणि के पास दीक्षित हुये। २२ वर्ष की अवस्था में तेरापन्थ सम्प्रदाय के आचार्य बने। आपके सामने बड़े बड़े संघर्ष आये, विरोध आये। बीकानेर, जयपुर आदि स्थानों में इतने भयंकर संघर्ष हुये कि बहुतों के हृदय डगमगा उठे, सन्तुलन बिगड़ चुके, किन्तु आपने तो हिमालय की तरह अडिग रहकर उन सब विरोधों पर विजय पायी।

आपका सिद्धान्त है कि विरोध को विरोध से नही प्रेम से मिटाया जा सकता है। विरोधियों को तो आप अपना मित्र मानते है। जैसे कि आपने कहा है—

घर का पैसा घर का कागज घर को समय लगावै
तेरापथ प्रख्याति करै, उपकारी क्यों न कहावै।

जो हमारा विरोध करते हैं वे एक दृष्टि से हमारे उपकारी ही हैं क्योंकि अपना समय, धन, प्रतिष्ठा, नष्ट करके भी वे दुनियां मे हमारा प्रचार करते हैं। हमारा नाम फैलाते है। इसलिये आपका यह नारा है—

"जो हमारा हो विरोध, हम उसे समझें विनोद।"

(३२)

थ-थावरचा पुत्र—"मैं थावरचा पुत्र की तरह अमरता के पथ पर चलूँ।"

थावरचापुत्र—थावरचा पुत्र नाम का एक श्रेष्टि कुमार था

आसमान से बाते करने वाले महलों में ही उसका जीवन बीता। एकदा पड़ौस के घर से मधुर २ ध्वनिये आ रही थी। थावरचा पुत्र ने मां से पूछा—मां यह मधुर ध्वनि क्यों आ रही है।

माता—बेटा! ये जन्म के गीत हैं। पड़ोस में पुत्र का जन्म हुआ है उसी हर्ष में ये गीत गाये जा रहे हैं।

पुत्र—मां मुझे यह बड़े अच्छे लग रहे हैं। क्या मेरे जन्म पर भी ऐसे ही गीत गाये गये थे?

माता—बेटा तेरे जन्म पर तो बहुत बहुत गीत गाये थे।

मां कुछ दूसरे काम में लगी। कुमार गीत सुन रहा था कि सहसा बड़ी डरावनी और दुःख भरी आवाज आने लगी। पुत्र मां के पास गया। बोला—

मां—अब तो बड़ी दुःख भरी ध्वनि आ रही है।

मां—बेटा जो पुत्र जन्मा था, वह अब मर गया है, इसलिये सब रो रहे है।

पुत्र—मां क्या मुझे भी मरना पड़ेगा? फिर ऐसे ही रोना पड़ेगा।

मां गदगद होकर बोली–बेटा जो जन्मता है उसे मरना ही पड़ता है।

पुत्र—मां क्या मृत्यु से बचने का कोई मार्ग भी है।

मां—बेटा! एक मार्ग है। भगवान् नेमिनाथ की शरण में जाने वाले जन्म मरण से मुक्त हो सकते है।

पुत्र—मां तब मैं तो उन्हीं की शरण में जाऊंगा।

जो जन्म मरण से मुक्ति दिलवाते हैं—और वह उसकी खोज में चल पड़ा।

(३२)

द-द्रौपदी 'मैं द्रौपदी की तरह पराये दुःख को अपने से तोलूँ।'

द्रौपदी—महाभारत के युद्ध मे जब भीम ने दुर्योधन को पछाड़ दिया था, तब वह रण भूमि मे पड़ा सिसक रहा था। बड़े बड़े साथी आये। सभी ने आंसू बहाये; अन्त मे अश्वत्थामा ने पूछा—राजन ! अब आपकी कोई अन्तिम इच्छा हो तो कहिये।

दुर्योधन ने आहें भर कर कहा—और कुछ नहीं सिर्फ पांचों पाण्डवों के कटे हुये शिर देखना चाहता हूँ ·· ।

सुनते ही सबका खून सूख गया, किन्तु अश्वत्थामा ने जोश भर के पाण्डव शिविर की ओर कदम बढ़ाये।

अंधेरी रात थी, युद्ध समाप्त हो गया था, पाण्डव श्री कृष्ण के साथ बाहर गये हुये थे। पांचों पांण्डव पुत्र पांचाल सुख से लेट रहे थे। अश्वत्थामा ने चुपचाप पाण्डवों के भ्रम से पांचो के शिर काट लिए और दुर्योधन के सामने लाकर दिखाये ··

दुर्योधन ने लम्बी सांस भरी—हाय ! यह अन्याय क्यों किया, ये पाण्डव थोड़े ही हैं। ये तो हमारे कुल दीपक 'पांचाल' है। मेरा विरोध पाण्डवों से था उनके पुत्रों से नहीं बस यह सुनते ही सबके चेहरे फक हो गये ······ ···।

इधर पाण्डव सेना में हाहाकार मच गया .....द्रौपदी रो रही थी। श्री कृष्ण और पाण्डव आये और यह बात जानकर बड़े दुःखी हुये। द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की....... "मैं जब तक अपने पुत्र घातक को अपने हाथ से नहीं मार डालू तब तक अन्न जल नहीं लूंगी। यह सुनते ही भीम को गुस्सा आया और उस हत्यारे की खोज में चल पड़े।

रोनी सी सूरत बना कर अश्वत्थामा द्रौपदी के सामने बन्दी बना पड़ा है। द्रौपदी हाथ में तलवार लिये ज्यों ही अश्वत्थामा के टुकड़े करने को उद्यत हो रही है त्यों ही मन में विचार आया– "इसके मरने से इसकी माँ को कितना दुःख होगा। कैसे वह रोयेगी? आज मुझे अपने पुत्रों का जो दुःख हो रहा है, वही दुःख इसकी माँ को भी होगा।" द्रौपदी के हाथ रुक गये। श्री कृष्ण ने कहा–द्रौपदी! देखती क्या हो करो दुष्ट के टुकड़े। द्रौपदी ने कहा–पुत्र का दुःख कैसा होता है, यह मैं जानती हूँ। अब मैं इसकी माँ को पुत्र हीना बनाकर दुःखिनी क्यों बनाऊं? यह कह कर सिर्फ उसका अपमान करके ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके उसे छोड़ दिया।

देखने वाले सब द्रौपदी के इस दुःख को अपने दुःख से तोलने की भावना की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे।

(३४)

ध–धन्नजी—'मैं धन्नजी की तरह ताड़ना सुनकर तुरन्त प्रबुद्ध हो उठूँ।"

धन्नजी--धन्नजी-राजगृह के एक धनाढय सेठ के पुत्र थे। गोभद्र नामके धन कुवेर सेठ की पुत्री सुभद्रा तथा राजा श्रेणिक की पुत्री, आदि आठ सुकुमार और सुन्दर कन्याओं से उनका विवाह हुआ। धन्नजी वड़े वुद्धिशाली और धार्मिक थे। इनकी धनाढयता की तो दूर दूर तक धाक थी—

एक वार धन्नजी स्नान करने वैठे। आठो स्त्रिये अपने अपने हाथों से उन्हे नहला रही थी। शीतल पानी के कलश उंडेल रही थी। अचानक पानी की एक गर्म वूंद उनके शरीर पर पड़ी। धन्नजी चमके, यह क्या? कहाँ से आया यह गर्म पानी? और ज्यों ही उन्होंने ऊपर की ओर मुंह किया तो सुभद्रा की आँखों से टपाटप आंसु की लड़ी गिर रही थी।

यह क्या? आज तुम्हें क्या दुःख है? वेचेन क्यों होरही हो, धन्नजी ने पूछा।

सुभद्रा—यों ही?

धन्नजी—यों ही का आखिर कारण क्या है?

सुभद्रा—मेरा भाई शालिभद्र संयम लेने को तैयार हो रहा है, वह अपनी वत्तीस प्रिय स्त्रियों में से प्रति दिन एक एक स्त्री का त्याग कर रहा है। भाई की ममता का विचार आते ही हृदय दुःखी हो गया। वस यही कारण है।

धन्नजी—इसमे क्या वीरता है, जव विरक्ति ही हो गई तो फिर एक एक क्या छोड़ता है। सवको साथ ही क्यों न त्याग दे? यह तो गीदड़पन है।

ये शब्द सुभद्रा के दिल में चोट कर गये। वह झुंझला कर बोली—बातें करनी ही सरल है, वह बत्तीस को छोड़ रहा है, आप तो आठ को भी नहीं छोड़ सक रहे हैं।

बस! सुनते ही धन्नजी का सुप्त तेज जागृत हो गया, गीले भीगे शरीर से ही वे उठ खड़े हुये। "बस! आज से तुम सब मेरी बहने हो" आठों सुन्दरियाँ अवाक् रह गई। हंसी हंसी में यह क्या गजब हो गया। सुभद्रा बार बार क्षमा मांगने लगी। लेकिन धन्नजी तो सिंह की तरह सब कुछ त्याग कर शालिभद्र को ललकारने चल पड़े।

एक ही बात पर धन्नजी का आत्म तेज जाग पड़ा। और वे संसार के बन्धनों से मुक्त हो गए—

(३५)

न—"नमिराजर्षि"—मैं 'नमिराजर्षि की तरह सदा एकत्त्व भाव में रमण करूँ!

नमि राजा—विदेह देश की राजधानी मिथला के राजा नमि भोग-विलास में अत्यन्त आसक्त रहते थे। भोग के अतिरेक से दाह ज्वर का वह भयंकर कालकूट फूट निकला जो रात दिन नमि के प्रिय देह को सालता रहता। नमिका जीवन-सुख, जीवन-भार में परिणित हो गया—सर्वत्र दुःख और दर्द की दुनियाँ।

वैद्यराज ने बामन चन्दन के लेप का आदेश दिया। चन्दन घिसने का और लेप करने का काम राजरानियों ने अपने हाथ में

ही रक्खा—नमि के प्रति रानियों के मन में कितना गहरा अनुराग था।

चन्दन घिसते समय चूड़ियों के संघर्षण से होने वाला कोलाहल भी जब नमि को सह्य न हो सका, तब रानियों ने सौभाग्यसंसूचक एक एक चूड़ी रखकर अपना काम चालू रखा। अब काम होते भी कोलाहल नहीं था, वातावरण में शान्ति थी।

नमि ने पूछा—क्या चन्दन नहीं घिसा जा रहा है ?

उत्तर मिला—घिसा तो जा रहा है, परन्तु हर रानी के हाथ में एक-एक चूड़ी होने से संघर्षण जन्य शब्द नहीं हो पा रहा है।

नमि की अन्तश्चेतना जागी। राजा नमि हृदय के अन्तस्थल में उतर कर सोचने लगा—एकत्व में ही वास्तविक सुख का अधिष्ठान है, दो का मिलन ही दुःख का श्री गणेश है। एकत्व भावना की, पराकाष्ठा में से वैराग्य आविर्भूत हुआ, जिसको पाकर नमि एक पल भर भी राजप्रसादों में न रह सके। आत्म साधन के महापथ पर चल पड़े।

भोग का सम्राट् योग का परिव्राट् बनकर आत्म भाव में भावित होकर अमर बन गया।

(३६)

प्र–प्रदेशी—'मैं प्रदेशी की तरह युक्ति संगत तत्व को स्वीकार करने हर समय तैयार रहूँ।'

प्रदेशी—पुराने जमाने में श्वेताम्बिका नामक नगरी में 'प्रदेशी' नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम था 'सूर्य

कान्ता'। राजा बड़ा नास्तिक एवं क्रूर स्वभाव का था। राजा का प्रधान मंत्री चित्त था जो बडा ही धर्मिष्ठ एवं समझदार था। एक बार चित्त जी के निवेदन पर केशी कुमार नाम के आचार्य उस नगरी में आये जो शहर के बाहर बाग में ठहर कर धर्म कथा करने लगे।

चित्त मंत्री राजा को घोड़ों की सैर कराता हुआ उसी बाग में ले आया। राजा नें, मुनि मण्डली को बैठे देख कर घृणा करते हुये कहा–ये मोड़े कौन बैठे है? क्यों शोर मचा रहे है?

चित्त–चलिये इनसे पूछे क्या बात है?

राजा मुनि के सामने अकड़ कर खड़ा हो गया। मुनि का धर्मोपदेश सुन कर राजा ने कई प्रश्नोत्तर के बाद एक प्रश्न किया–जब आत्मा नाम की कोई वस्तु ही नहीं है तो फिर धर्म की क्या जरूरत है?

मुनि—क्यों नहीं है? क्या आपने देख लिया कि 'जीव' नही है?

राजा—मैंने बहुत सी परीक्षायें की है, मेरा दादा जो बड़ा ही क्रूर था आपके सिद्धान्त से वह नरक में गया होगा। अगर वह आकर मुझे कह दे कि–देख मैंने पाप किये सो नरक में गया हूँ। तू! पाप मत करना। तो मैं मान सकता हूँ कि नरक है—

मुनि—राजन्! तुम्हारा कोई भयंकर अपराधी जो बड़ी मुश्किल से तुम्हारी पकड़ में आया हो। वह कहता हो कि मुझे एक बार अपने घर वालों से जाकर कहने दो कि मैंने जो अपराध

किया उसका यह दण्ड मिला है। इसलिये कोई ऐसा अपराध मत करना, तो क्या तुम जाने दोगे ?

राजा—नहीं ! कदापि नहीं।

मुनि—तो फिर परमाधार्मिक अपने अपराधी को तुम्हारे पास कैसे आने देंगे ?

राजा—खैर ! मेरी दादी जो वड़ी धार्मिक थी आपके सिद्धान्त से वह स्वर्ग में गई होगी अगर वह भी आकर मुझे कह दे कि मैंने धर्म के प्रताप से ये फल पाये है, अत. तुम भी धर्म करना—तो भी मै मान सकता हूँ।

मुनि—समझो कि तुम स्नानादिक करके पूजन के लिये मन्दिर में जा रहे हो। अचानक तुम्हारा भंगी आकर तुमसे निवेदन करे कि मैंने पाखाने की सफाई करदी है, कृपया आप निरीक्षण कर लीजिये। क्या उस समय वहाँ जा सकते हो ?

राजा—ऐसे गन्दे स्थान पर उस समय कैसे जाऊं ?

मुनि—देव लोक, इतना सुरम्य है कि वे यहाँ (मनुष्य लोक) की गन्दगी से घबराकर आना भी नहीं चाहते—

राजा—खैर ! इसे भी जाने दो, परन्तु यह तो नहीं मान सकता कि 'जीव' शरीर से अलग वस्तु है। क्योंकि मैंने इसका परीक्षण किया है। एक वार एक चोर मेरे सामने लाया गया। मैंने उसे जीवित ही एक लोहे की कोठी में डलवा कर ऊपर से विल्कुल वन्द करवा दिया। कुछ दिनों वाद मैंने उसे निकाला तो वह मर गया था, उसके शरीर मे वहुत से कीड़े किल विला रहे

थे। किन्तु कोठी में कहीं भी छेद नहीं हुआ। अगर जीव कहीं से निकल कर बाहर जाता तो कहीं भी छेद होता। इसलिये शरीर से भिन्न जीव है। यह मैं नहीं मान सकता।

मुनि—बन्द कोठरी में से बजाया हुआ शंख नगाड़ा आदि का शब्द बाहर आता है पर कहीं छेद होता है? अग्नी में से तपे हुये गोले में अग्नी प्रवेश करती है, किन्तु कभी छेद दिखता है? जब कि ये सब स्थूल चीजें हैं।

राजा—नहीं दिखता है।

मुनि—तो फिर जीव के निकलने और प्रवेश करने पर छेद कैसे हो सकता है। जो अत्यन्त ही सूक्ष्म है।

राजा—एक बात और है। मैंने एक चोर को जीवित तोला और फिर मारने के बाद भी तोला, किन्तु उसमें कोई भी अन्तर नहीं आया। जीव के निकलने पर अन्तर आना चाहिये। फिर उसके टुकड़े करने पर भी जीव का कहीं पता नहीं चला।

मुनि—हवा से भरी हुई तथा खाली की हुई किसी चमड़े की मशाक के तोल में कही अन्तर पड़ता है? और अरणि नाम की लकड़ी में अग्नी होती है सो क्या टुकड़े करने पर दिखलाई पड़ सकती है?

राजा—नहीं।

मुनि—तो फिर जब इन भौतिक (पोद्गलिक) वस्तुओं में ही कोई अन्तर नही दिखता है तो जीव जैसी अभौतिक वस्तु का भार और दीखना कैसे सम्भव है।

राजा, केशी मुनि की इन युक्ति संगत बातों के सामने नत मस्तक हो गया। उसका हृदय श्रद्धा से भर गया। आज से वह मुनि के सामने जैन श्रावक बन गया। वह अपने राज काज से, संसार से; बिल्कुल विरक्त होकर, धार्मिक क्रियाओं में बड़ी शान्ति से जीवन बिताने लगा। सूर्य कान्ता रानी ने राजा को अपने से विरक्त हुआ देख कर तेरहवें तेले के पारने में मारने के लिये भोजन में विष दे दिया। राजा को यह मालूम हुआ। किन्तु फिर भी अत्यन्त शान्ति और क्षमा से अपना आत्मालोचन करके अनशन पूर्वक समाधि मरण करके सूर्याभ नामका देवता बना।

(३७)

फ—फूट 'मैं फूट को सर्व नाशिनी समझ कर कोशों दूर रहूँ।'

फूट—भारत वर्ष में एक ऐसा व्यापक रोग फैल रहा है जो हर प्रान्त, नगर, समाज, संस्था और घर में व्याप्त हो चुका है। इसी का दुष्परिणाम है कि आज भाई भाई परस्पर प्रेम से हिल मिल नहीं सकते—यह महारोग है—फूट दो प्रकार की होती है—एक धातु की, एक मिट्टी की, सोने चांदी की फूट (दरारें) मिटाई जा सकती है। पुनः उसका उपयोग हो सकता है। किन्तु मिट्टी की फूट मिट नहीं सकती। पैरों में रुलने के सिवाय उसका कोई भी उपयोग नहीं है। घड़ा फूटने के बाद उसकी ठीकरियें पैरों में चुभ कर जन जन के लिये दुखदायी ही बनती है।

जहाँ फूट होती है वहाँ समूची शक्ति छिन्न भिन्न होकर यों ही नष्ट हो जाती है—

झाड़ू के तिनके मिल जुल कर जहाँ सफाई करने के काम में आते हैं वहाँ वे बिखर कर स्वयं ही कूड़ा करकट बन जाते हैं। फूट सब प्रकार के कर्मों में घातक है अतः इसे जल्दी से जल्दी मिटाना चाहिये।

(३८)

ब—बाहुबली—"मैं बाहुबली की तरह मान को हटाकर ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करूँ।"

बाहुबलि:—भगवान् आदिनाथ के साधु बन जाने के बाद उनका ज्येष्ठ पुत्र भरत अपना साम्राज्य फैलाने में जुट गया। जब दिग्विजय करके बाहुबलि (अपने छोटे भाई) को अपनी आज्ञा स्वीकार कराने आये तो दोनों भाईयों में बड़ा युद्ध ठन गया। इस युद्ध में भरत चक्रवर्ती को करारी हार खाने की नौबत आ गई ....बाहुबलि ने भरत को मार डालने के लिये ज्यों ही मुट्ठी उठाई त्यों ही विचार आया, अरे! मैं किस पर मुट्ठी उठा रहा हूँ? अपने बड़े भाई पर! इस तुच्छ राजपाट के लिये। धिक्कार है मुझे .... बस! उसी मुट्ठी से वे अपने शिर पर के बालों को लुंचित करके मुनि बनकर जंगल की ओर चल पड़े।

उन्हें खड़े खड़े तपस्या और ध्यान करते १२ मास पूरे होने को आए। किन्तु अभी तक साधना का फल नहीं मिला। हृदय

में आलोक नहीं हुआ....... अचानक भगवान् से प्रेरित होकर उनकी दोनों साध्वी बहने ब्राह्मी और सुन्दरी अपने भाई के पास आई और बड़े मीठे स्वर में प्रबुद्ध कर रही है—"वीरा म्हारां गजब थकी ऊत्तरो" सुनते ही बाहुबलि चोंक पड़े—कहाँ है मेरे पास हाथी ? अन्तर को टटोलते २ उन्हें दीख गया—अरे ! मैं तो अभिमान के हाथी पर चढ़ा बैठा हूं।

भगवान् की सेवा मे मैं इसलिये नही जा रहा हूँ कि वहाँ मुझे अपने से पूर्व दीक्षित छोटे भाईयों को वंदना करनी पडेगी . . धिक्कार है मुझे .... साधु बन गया फिर भी दिल से अभिमान नहीं मिटा.... अभी चलता हूं ...... बस ! ज्यों ही पैर उठाकर चलने को तत्पर हुये कि घातिकर्मों का चकनाचूर हुआ और केवल ज्ञान के अनन्त प्रकाश से अन्तर जगमगा उठा . . . . वह अभिमान का आवरण ही था जो आज तक केवल ज्ञान को रोके बैठा था अभिमान हटा और ज्ञान हुआ।

(३६)

भ—भिक्षु स्वामी—मैं भिक्षु स्वामी के आदर्शों पर दृढ निष्ठा से बढ़ता चलूं !

भिक्षु स्वामी का जीवन विशाल आकाश की तरह अगम्य है। उनके जीवन की अनेक घटनाये युग युग तक चमकते हुये नक्षत्र मण्डल की तरह प्रति समय पथ प्रदर्शित करती रहेगी। यहां दो चार घटनाये दी जाती है जिनके दिव्य प्रकाश से प्रत्येक जीवन मे नई ज्योति व नवीन स्फुरण आ सकती है।

(१)

एक बार स्वामीजी विहार कर रहे थे, मार्ग में कुछ सज्जन मिले, जो उनके पास आये और परिचय पूछा—

स्वामीजी—मेरा नाम है भीखण।

सज्जन—हैं ! भीखणजी, बड़ा बुरा हुआ

स्वामीजी—क्यों, क्या हुआ ?

सज्जन—सुबह सुबह ही तुम्हारा मुंह दीख पड़ा, अब तो हमें नरक में जाना ही पड़ेगा—।

स्वामीजी—(मुस्कराकर)—और तुम्हारा मुंह देखे ?

सज्जन—वह तो सीधा स्वर्ग में ही जाता है।

स्वामीजी ने गम्भीर मुद्रा से कहा—खैर !! मैं तो ऐसा नहीं मानता पर तुम्हारे कथनानुसार मुझे तो मिलेगा स्वर्ग और तुम्हें मिलेगा नरक........

वे तो अपना सा मुंह लेकर चलते बने—

स्वामीजी ने कड़वी जहरसी बात को भी अपनी द्रिव्य क्षमा से अमृत बना दिया।

(२)

एक कोई आया भिक्षु स्वामी के पास और बोला—वे अमुक अमुक तुम्हारी गल्तियां निकाल रहे हैं। उनका प्रतिकार क्यों नहीं करते ? मोम की मक्खी बने क्यों बैठे हो ? स्वामीजी-भाई !

यह तो अच्छा ही है, मै अपनी गलतियें निकालने में लग रहा हूँ. इसमें वे भी मेरी सहायता करते है। कुछ मै निकालूंगा कुछ वे सज्जन निकालेंगे· · ··· बस ! फिर मैं तो निर्दोप बन जाऊंगा ··· यही मेरा ध्येय है ··इसमें बुरा मानने जैसी क्या बात है · ·

वह तो उल्टे पैरों चला गया यही सोच कर कि आखिर पानी के पास अग्नि को मात खानी ही पड़ती है। भीखणजी के पास गुस्सा कैसा ··· ?

(३)

स्वामीजी प्रवचन कर रहे थे, कोई झुंझला कर उनके शिर पर हाथ से टकोरा मार कर चलता बना। समीप में बैठे कुछ श्रावकों को यह बहुत बुरा लगा। स्वामीजी ने समझाया जब तुम टके की हांडी लेते हो तो कितनी बजाकर (परीक्षा करके) लाते हो। क्या पता यह भी गुरु करने के लिये आया हो और इसलिये परीक्षा करता हो· · ·

सब शान्त भाव से स्वामीजी की ओर टकटकी लगाकर देखने लग गये। और वह पैरों में गिर पड़ा · ·

(४)

कोई उनके पास आया और झट से पूछा—भीखणजी घोड़े के कितने पैर होते है ?

स्वामीजी ने कुछ क्षण सोचा और कहा—चार।

प्रश्नकर्त्ता—वाह ! यह भी कोई सोचने की बात थी।

स्वामीजी—यह तो ठीक है, किन्तु तुम पूछ बैठते कि कंसलाव के पैर कितने होते हैं ? प्रश्न कर्त्ता–यह तो सच है मैं तो यही पूछने वाला था और तब तो सोचना ही पड़ता। स्वामीजी—इसलिये–मैं मानता हूँ कि प्रत्येक बात जल्दी से नहीं कहकर खूब सोच विचार कर कहनी चाहिये ·· चाहे वह छोटी हो या बड़ी। जल्दी में कही हुई छोटी बात में भी बड़ी भूल रह सकती है ·····

(४०)

म–मणिशेखर–मैं मणिशेखर की तरह सत्य की अग्नि परीक्षा में खरा उतरूँ।

मणिशेखर—मणिशेखर एक सेठ का पुत्र था। बचपन में ही कुसंगति के कारण बड़ा चोर बन गया। सेठ बहुत ही दुःखी था समझाता बुझाता किन्तु उस चिकने घड़े पर तो एक छांट भी नहीं लगती। एक बार एक ज्ञानी मुनि नगर में आये, सेठ ने उनसे अपने दुःख की बात कही, मुनि ने मौका देख कर मणिशेखर को बतलाया ·· ··· बहुत ही समझाने पर आखिर उसने एक बात स्वीकार की · मै चोरी तो करूंगा किन्तु झूंठ नहीं बोलूंगा। इस विचित्र प्रतिज्ञा के बाद भी मणिशेखर दिन को तो व्यापार करता और रात को चोरी ······ ·।

जनता में भारी अशान्ति फैलने लगी, नित्य प्रति ही चोरियें होती और उनका पता लगता नहीं।

एक दिन रात्री में स्वयं राजा वेष बदल कर नगर में गश्त लगा रहा था ·····अचानक एक आदमी सामने से आया, राजा ने पूछा—कौन है ?

मै हूं ! मणिशेखर।

राजा—क्या काम करते हो ?

मणि—दिन को व्यापार रात को चोरी।

राजा—किधर जा रहे हो ?

चोर—चोरी करने········

राजा—अच्छा ! कहाँ करोगे ?

चोर—राज भण्डार में····· ···.

राजा ने उसे कोई पागल आदमी समझा और आगे चलने लगा·· ·घूम फिर कर इधर से राजा आया—उधर से मणिशेखर। फिर दोनों मिल गये राजा ने वही प्रश्न किया—कौन है ?

मै हूँ। मणिशेखर।

राजा—क्या चोरी करने को गये थे ?

चोर—हाँ !

राजा—कहाँ की ? क्या लाये ?

चोर—राज भण्डार से, दो पेटियाँ लाया हूँ।

राजा ने सोचा चोर और इतना सत्यवादी·······बिल्कुल असंभव है, यह तो वही पागल है जिससे पहले भी मेरा पल्ला

पड़ा था। राजा महलों की ओर चला गया ...... और मणिशेखर अपने घर की ओर।

प्रातःकाल कोषाध्यक्ष, रक्षक आदि राजा के सामने उपस्थित हुये, गिड़गिड़ाते हुये बोले–राज भण्डार में चोरी हो गई। राजा को रात की बात याद आई, क्या सच ही चोरी हो गई है? क्या माल गया? कोषाध्यक्ष–और तो कुछ नहीं गया जवाहारात की आठ पेटियाँ चोरी चली गई। राजा को लगा कहीं दाल में काला है। रात को चोर मिला था उसने ही यहाँ चोरी की है, किन्तु उसने सिर्फ दो पेटियें उठाई है, छः पेटिये कहीं गायब हो गई हैं?

राजा ने मणिशेखर का पता लगाया, उसको बुलाया गया, रात की बात पूंछी–तो उसने ठीक वही बात कही जो रात में घटी थी। अब छै पेटियों का पता लगाने के लिये कोषाध्यक्ष व पहरेदारों पर दड़ाधड़ मार पड़ने लगी, तो राजा के सामने आकर गिड़गिड़ाने लगे।

राजा––सच बताओ, छै पेटियां कहां गई।

कोषाध्यक्ष––हमने ली है। सोचा चोरी तो हो ही गई है, दो का कहेंगे वैसे ही आठ का कह देंगे।

छओं पेटियां राजा के सामने आई, जो चोर था वह साहूकार निकला और साहूकार चोर निकले। राजा ने मणिशेखर को उसकी सत्यवादिता पर प्रसन्न होकर अपना मन्त्री बना लिया और उस दिन उसकी चोरी भी अपने आप छूट गई।

मणिशेखर ने प्रत्येक समय सत्य का सहारा लिया। और इसी सत्य के बल पर वह अपने जीवन का उत्थान कर सका।

(४१)

य–यवराजऋषि–मैं यवराज ऋषि की तरह प्रत्येक वस्तु से ज्ञान लेने का प्रयत्न करूं!

यवराज ऋषि—बहुत पुरानी बात है, वसंतपुर नामके नगर में यवराज नाम के राजा थे, उनके एक पुत्र था गर्दभसेन, पुत्री का नाम 'स्वर्ण गुलिका' था। राजा का मन्त्री जो 'दीर्घपृष्ट' नाम का था, बड़ ही चतुर था। वृद्धावस्था में राजा ने अपने पुत्र को राजकाज सौंप कर मुनिव्रत (दीक्षा) अपना लिया। गुरु की सेवा में रहने लगे। गुरु ने नवदीक्षित मुनि को कुछ अध्ययन करने के लिये कहा किन्तु मुनि का मन अध्ययन करने में बिल्कुल ही नहीं लगता। गुरु ने एक उपाय सोचा''' जब जिम्मेदारी आती है तब व्यक्ति स्वयं उसके योग्य बनने का प्रयत्न करता है। इसलिये एक दिन मुनि को बुलाकर आचार्य ने उन्हे अपने ग्राम में उपदेश करने के लिये भेजा।

आचार्य की आज्ञा से उन्हें जाना पड़ा पर वे सोचते रहे कि वहाँ जाकर क्या उपदेश करूंगा। मुझे आता जाता तो कुछ है नहीं। इधर मार्ग में एक कोई गधा खड़ा खड़ा खेत में उगे हुये जौ पर ताक रहा था। जब मालिक ने गदहे की यह वक्र चेष्टा देखी तो वह बोल उठा—

इधर उधर क्या देखता, समझ गया तव भाव।
जव पर तेरी नजर है, रे रे, गर्दभ राव ॥

मुनि को यह दोहा पसन्द आया और याद कर लिया—

आगे चले तो शहर के बाहर कुछ लड़के गुल्लीडण्डा खेल रहे थे, जब उनकी गुल्ली कहीं जा पड़ी तो लड़के इधर उधर दौड़े। एक लड़के ने कहीं खड्डे में पड़ी देख कर कहा—

किधर गई वह गुल्लिका, तुम्हें दिखती नाय,
दीख रही मुझको अरे! पड़ी खड्डे के मॉह।

मुनिने इस दोहे को भी रट लिया।

अब दो दिन के व्याख्यान की सामग्री मुनि के पास हो गई .... आगे जाते जाते फिर मुनि एक खेत में देखते हैं, गदहा खड़ा है। इधर एक काला नाग फुंकार कर रहा है ' कुम्भकार को आते देख कर गदहा भाग पड़ता है। तब कुम्भकार बोलता है—

रे भद्र गर्दभ! अरे! क्या भगने का अर्थ,
दीर्घ पृष्ठ से तुम डरो, मुझसे डरना व्यर्थ।

मुनि ने इस गाथा को भी याद कर लिया। शाम को मुनि शहर के बाहर जाकर ठहर जाते हैं और बार बार उन दोहों को दोहराते हैं।

× × × ×

इधर से स्वर्ण गुलिका को मंत्री ने उड़ा लिया, गर्दभ सेन आदि सारा परिवार बहिन के नहीं मिलने से अत्यन्त चिन्तित हो रहा था। मन्त्री ने जब मुनि का आगमन सुना तो दिल में

खटका पैदा हो गया कि कहीं मनि अपने ज्ञान बल से मेरा सारा भण्डाफोड़ न कर दे। इसलिये मुनि को मारने का उपाय सोचने लगा।

मन्त्री उदास सा होकर राजा के पास आया और बोला आपके पिताजी यहाँ आये हैं। आप समझते होंगे कि ये उपदेश करने आये है, किन्तु वास्तव मे यह आपका राज्य हड़पने आये है। मैंने अच्छी तरह से पता लगा लिया है। आपका हित इसी मे है कि मुनि को किसी भी प्रकार से खत्म कर दिया जाय।

राजा तो सुनते ही दंग रह गया। सोचा यह साधु वेश में इतना कपट कर रहा है। पिता है तो क्या? इसे तो मार ही देना चाहिये। यही सोचकर रात में तलवार लिये मुनि के स्थान पर पहुँचकर चुपचाप ताक रहा है। मुनि तो बैठे हुये उन्ही पद्यों को दोहरा रहे थे। ज्यों ही पहला पद्य बोला तो राजा चौंक गया, सोचा—मुनि तो जरूर बड़े ज्ञानी है। मुझे समझ गये हैं। अब अगर मेरी बहन को भी बता दे तो ठीक ···· · और इतने हीं में मुनि से दूसरा पद्य बोला राजा ने समझा मुनि बता रहे है कि 'गुल्लिका' तो खड्डे (भोहरे) में पड़ी है, अभी जाकर इसका पता लगाऊंगा।

मुनि ने जब तीसरा पद्य बोला तो राजा की आँख ही खुल गई विचार किया · मुनि तो सफ चेता रहे हैं तू मेरे से क्यों डरता हैं, तुझे तो दीर्घपृष्ठ (मन्त्री) से डरना चाहिये। वह बार बार मुनि के ज्ञान की प्रशंसा करने लगा।

अपने इस कृत्य पर खुद को ही धिक्कारता हुआ आकर मुनि के चरणों में पड़ गया और मुनि के सामने सारा भेद खोल दिया। मुनि भी ज्ञान के चमत्कार को देखकर सोचने लगे—"तीन पद्यों के ज्ञान से इतना बड़ा अन्याय होते बच गया। अगर बहुत सा ज्ञान सीख लूंगा तो संसार के सभी संकटों से बच सकता हूँ।" इस प्रकार मुनि के मन में ज्ञान की जिज्ञासा अत्यन्त प्रबल हो गई ... ...

(४२)

२—'रयणा देवी'—मैं भौतिक प्रलोभनों को 'रयणा देवी' के प्रलोभनों के समान दुःखद समझूं ।

चम्पानगरी के व्यापारी 'माकन्दी पुत्र' जिन पालित और जिन रक्षित बार बार जलयान से समुद्री यात्रा करते थे, समुद्री व्यापार में उन्होंने पर्याप्त धन एकत्रित कर लिया था । ऐसी एक यात्रा में समुद्र में अधंड आगया, उनका जलयान लहरों के चपेटे में आकर टुकड़े-टुकड़े होगया। पता नहीं लगा कि मल्लाह और सेवकों का क्या हुआ; किन्तु वे दोनों भाई लकड़ी के एक पटरे को को पकड़ कर समुद्र तैरते हुए एक द्वीप पर जा पहुँचे।

जिस द्वीप पर जिन पालित और जिन रक्षित बहते हुए पहुँचे थे, उस पर एक यक्षिणी का भवन था। ये दो भाई द्वीप पर पहुँच कर कुछ समय तक विश्राम करते रहे। थकावट दूर होने पर वहां के सरोवर में स्नान करके फल कन्द आदि ढूंढने निकले

उसी समय यक्षिणी ने उन्हे देखा। वह उन दोनों को अपने भवन में ले गई।

उस यक्षिणी के भवन में दोनों भाईयों को कोई कष्ट नहीं था। उनका भरपूर स्वागत सत्कार होता था। उन्हें सब सुखोपभोग उपलब्ध थे। किन्तु यक्षिणी उन्हें उस द्वीप से बाहर नहीं जाने देना चाहती थी। एक बार यक्षिणी को किसी कार्यवश बाहर जाना पड़ा, उन्हे दक्षिण दिशा के निषेध करके बाहर गई। थोड़े ही समय मे दोनों भाई अपने नगर जाकर अपने सम्बन्धियों से मिलने को उत्सुक हो उठे। वहां से निकल भागने का अवसर ढूंढने लगे।

समय-समय पर वे दोनों उस द्वीप मे घूमने निकलते थे। द्वीप के वन्य प्रदेशों मे घूमते समय दक्षिणदिशी मे एक व्यक्ति, मिला जो शूली पर चढ़ा दिया गया था। वह मृत्यु के निकट पहुँच गया था। उससे ज्ञात हुआ कि वह भी व्यापारी है। समुद्र में जलयान के डूबने से वह भी तैरता हुआ इस द्वीप पर पहुँचा था। और यक्षिणी ने भी पहले पर्याप्त सत्कार किया था। किन्तु कुछ ही दिनों बाद यक्षिणी ने उसे शूली पर लटका दिया। उसी पुरुष ने बताया—"इस द्वीप पर निश्चित तिथियों में एक यक्ष घोड़े का रूप धारण करके आता है, और पुकारता है—"मै किसे पार उतारू ?" उसके पास जाकर प्रार्थना करने से वह समुद्र पार उतार देता है। परन्तु उसका नियम है कि उसकी पीठ पर बैठा व्यक्ति यदि पीछे दौड़ती यक्षिणी को देख ही ले तो वह यक्ष उस व्यक्ति को तत्काल समुद्र में फेक देता है।"

दोनों भाईयों ने उस व्यक्ति को धन्यवाद दिया। निश्चित तिथि पर यक्ष आया। संयोग वश यक्षिणी उस समय कहीं बाहर गई हुई थी। दोनों भाई उस अश्व रूप धारी यक्ष के पास गये और उसने इनकी प्रार्थना स्वीकार करली। परन्तु जैसे ही दोनों भाई उसकी पीठ पर बैठकर समुद्र पार होने लगे, यक्षिणी पहुँची। उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था। वह दोनों को पुकारने लगी—प्यारे ! तुम मुझे छोड़कर कहां जा रहे हो ? तुम तो मुझे बहुत प्यार करते थे।

दोनो में से जिन रक्षित का मन विचलित होने लगा। जिन-पालित ने कहा—'भैया ! प्रलोभन में मत पड़ो।' किन्तु वह यक्षिणी अब जिनरक्षित को ही नाना प्रकार से सम्बोन्धित करके प्रेम प्रदर्शन कर रही थी। उससे प्रवाहित होकर जैसे ही जिन रक्षित ने यक्षिणी की ओर देखा, उस अश्व धारी यक्ष ने उसे अपनी पीठ से समुद्र में फैक दिया और उस क्रूर यक्षणी ने उसे मार डाला। जिनपालित पर अपनी बातों का प्रभाव न पड़ते देख कर लौट गई।

जिन पालित प्रलोभन में नहीं फंसने से आनन्द करने लगा और जिनरक्षित फंसा तो मोत के मुंह चढ़ गया.......

(४१)

ल-'लक्ष्मी'—लक्ष्मी का सच्चा निवास कहां है इस पर मनन करूं !

लक्ष्मी का वास—आज समूचा संसार लक्ष्मी के पीछे बेतहाशा भाग रहा है। दर दर की खाक छानने को तैयार है,

चाहे जैसे अन्याय करने पर उतारु हो जाता है–एक लक्ष्मी के लिये ...... फिर भी लक्ष्मी कहा मिलती है ? कहा जाता है कि एक वार यही प्रश्न इन्द्र महाराज ने लक्ष्मी से पूछ लिया–लक्ष्मी ! आजकल कहां हो ?

लक्ष्मी ने गर्जकर कहा–आजकल क्या ? मै तो सदा एक ही जगह रहती हूं। मेरा तो स्थान निश्चित है।

इन्द्र—अच्छा तो ! बताओ कहां रहती हो ?

लक्ष्मी बोली—गुर वो यत्र पूज्यंते यत्र वाणी सुसंस्कृता
अदंत कलहो यत्र तत्र शक्र। वसाम्यहम्।

इन्द्र ! जहां गुरुजनो का सत्कार होता हो, सुन्दर वाणी बोली जाती हो, कलह के लिये दांत भी न भिड़ते हों– मै हमेशा वहीं रहती हूं दुनियां धन को पाने के लिये और ही कही भटकती है, और लक्ष्मी अपना स्थान और ही कहीं बताती है।

(४४)

व–वासुदेव श्री कृष्ण–मैं वासुदेव श्री कृष्ण के जीवन से महानता का पाठ पढ़ूं !

वासुदेव श्री कृष्ण—वासुदेव श्री कृष्ण के नाम से भारत का जन मानस परिचित है। आज भी उनके नाम की स्थान स्थान पर धूम है। यह क्यों ?

क्योंकि उनके जीवन मे कुछ ऐसी महानताये थी जिनके कारण ही संसार उनको मानता है।

एक वार श्री कृष्णजी भगवान् नेमिनाथ के दर्शन करने जा रहे थे, मार्ग में एक वूढा आदमी एक ईंटों के ढेर में से धीरे धीरे ईंटें उठाकर एक तरफ रख रहा था। उसके कांपते हुये शरीर को देखकर श्री कृष्णजी ने हाथी पर वैठे वैठे ही एक ईंट उठाकर उधर रखदी। वस! फिर क्या था? पीछे के सभी आदमियों ने एक एक ईंट उठाई और उस बुड्ढे का काम वन गया। यह उनकी सामाजिक सहयोग की भावना थी। जो वड़े होकर भी छोटे को सहारा देते हैं, वे ही वड़े कहला सकते हैं।

× × × ×

एक वार स्वर्ग में श्री कृष्ण की गुण ग्राहकता की प्रशंसा हुई। दो देवता इस वात की परीक्षा के लिये आये, एक मृत कुत्ते का रूप वनाकर मार्ग में डाल दिया। श्री कृष्णजी उधर से गुजरे। साथ के आदमियों ने नाक भौं सिकोड़कर कहा—छिः! छिः!! मृत कुत्ते की वड़ी दुर्गन्ध आ रही है। श्री कृष्णजी ने उस ओर देखा—और वोले—देखो! मृत कुत्ते के दांत कितने उज्वल और चमकदार हैं। सव लोक और वे देवता भी चकित रह गये कि वासुदेव श्री कृष्ण बुरी से बुरी चीज में भी किस प्रकार अच्छाई खोज लेते हैं। ऐसी २ विशेपता ही मनुष्य को महान् वनाया करती हैं।

(४५)

श—शालिभद्र—मैं शालिभद्र की तरह आत्म स्वतंत्रता के लिये धन वैभव को ठुकरा चलूं!

शालिभद्र—राजगृह के बाजार में एक निराश व्यापारी लौट रहा था, उसके पास १६ रत्न कंवल थे, किन्तु वहां ऐसा ग्राहक भी नहीं जो उनको खरीद सके। अचानक महलों में बैठी एक वृद्ध माता भद्रा ने उस व्यापारी को बुलवाया और इन कंवलों का मूल्य पूछा—

व्यापारी—प्रत्येक कंवल की एक एक लाख स्वर्ण मुद्रा।

भद्रा—१६ ही हैं, हमें तो ३२ पुत्र वधुओं के लिये ३२ कंवल चाहिये।

व्यापारी—(आश्चर्य से) राजा श्रेणिक जैसे, इन बहुमूल्य कंवलों में से एक भी नहीं खरीद सके और आप ३२ मांग रही है।

भद्रा—खैर ! इनके दो दो टुकड़े करदो, सब को पहुँचा दिये जायेंगे और व्यापारी को हाथोंहाथ १६ लाख स्वर्ण मुद्रा दे दी गई।

दूसरे दिन प्रातः महारानी चेलना ने अपनी भंगन के शरीर पर उसी रत्न कंवल को चमचमाते देखा। बड़े आश्चर्य से जब उसको पुछवाया तो ज्ञात हुआ कि गोभद्र सेठ की पुत्र वधुओं ने पैर पौंछ कर गिराई है जिसे हम ले आये हैं, ऐसी ३२ कंबले हैं · ....

चेलना ने राजा से इसकी चर्चा की तो राजा भी आश्चर्य में डूब गया, सोचा—ऐसा भी क्या धनाढय है जो इस प्रकार रत्न कंवलों से पैर पौंछकर उन्हें गिरा देता है।

राजा ने अभय कुमार (मन्त्री) को बुलवाया यह समूची घटना सुनाकर उसके विषय में पूछा—ऐसा भी कोई धनाढ्य है? अभय कुमार—महाराज गोभद्र सेठ का पुत्र शालिभद्र वास्तव में ही ऐसा है। एक दिन के पुराने वस्त्र वहाँ नहीं पहने जाते। इसलिये उन्हें गिरा दिया जाता है।

राजा—ऐसा सौभाग्यशाली है? मैंने उसे देखा नहीं? मंत्री ने राजा रानी आदि अधिकारियों का शालिभद्र से मिलने के लिये उसी के महलों में कार्यक्रम बनाया।

× × × ×

भद्रा सेठानी ने बड़े आनन्द उत्साह से राजा का स्वागत किया। राजा के मन सेठानी के महलों की सजधज देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। आखिर शालिभद्र से मिलने की इच्छा प्रकट की।

महलों में कई खण्ड तक राजा गया, ऊपर जाकर माता ने पुत्र से कहा—राजा श्रेणिक आये हैं।

शालिभद्र—तो खरीद लो?

माता—खरीदने की वस्तु नहीं है, वे तो अपने स्वामी हैं, नगर के नाथ हैं।

शालिभद्र—अच्छा! मेरे शिर पर भी कोई नाथ है? मैं स्वतन्त्र नहीं? माता के आग्रह पर वह नीचे आया। राजा श्रेणिक ने इसके सौन्दर्य और सुकुमारता को देखकर दांतों तले अंगुली दबाई.........किन्तु शालिभद्र के विचारों में तो एक द्वन्द्व मच

रहा था, यह स्वतन्त्रता के मार्ग की खोज कर रहा था। एक एक सुन्दरी को एक एक दिन छोड़ने लगा ....

इधर इन्हीं के बहनोई धन्नजी ने आकर ललकार लगाई—एक एक को क्या छोड़ रहे हो? सब को साथ में ही छोड़ दो ना? बस इसी चुनौती को सुनते ही सालिभद्र घर से निकल पड़ा—धन्नजी और शालिभद्रजी संयम के कंटकाकीर्ण मार्ग पर बढ़ गये। इतने सुख और वैभव में रहने वाले शालिभद्र 'आत्म स्वतन्त्र' एवं 'आत्मनाथ' बनने के मार्ग पर अडिग मनोबल से बढ़ चले।

५–स्थूलीभद्र—मैं स्थूलिभद्र की तरह काजल की कोठरी में भी वेदाग रहना सीखूं।

स्थूलीभद्रः— पाटलीपुत्र बड़ा सुन्दर शहर था, नन्द नाम का राजा था। और उनके शकड़ाल नाम का मंत्री था। शकड़ाल के स्थूलीभद्र और श्रीयक नाम के दो पुत्र और सात पुत्रियें थी। स्थूलीभद्र किन्हीं कारणों से राजगृह की श्रेष्ठ नर्तकी कोशा के प्रेम बन्धन में फंस गये। वहाँ रहते उन्हें १२ वर्ष होने को आये। पिता ने बार बार निमन्त्रण भेजे किन्तु वे आये नही। पिता ने अपनी अन्तिम अवस्था में कहलाया–तुम्हारा पिता तुमसे एक बार मिलना चाहता है। स्थूलीभद्र ने सुन लिया, किन्तु कोशा के प्रेम बंधन से छूट नहीं सका ....

अचानक एक दिन उसी महलों के नीचे से शकड़ाल की शव यात्रा निकली। स्थूलीभद्र नीचे झांका और जब यह जाना कि यह शव उन्हीं के पिता का है तो बड़े दुःखी हुये। अपनी प्रेमान्धता पर पश्चाताप किया, और इधर से मंत्रीपद देने के लिये राजा ने भी स्थूलीभद्र को बुलाया। स्थूलीभद्र घर आये, पिता के शोक से मन में आकुलता थी और वह आकुलता आखिर वैराग्य के रूप में प्रकटी। राजा से मंत्रीपद लेने के लिये बिल्कुल अस्वीकार कर दिया। 'संभूति विजय' नामके महान् आचार्य के पास जाकर संयम लेकर आत्म साधन में जुट पड़े।

× × × ×

चार मुनि आचार्य की सेवा में निवेदन करने आये।

पहले—मैं अपना वर्षावास (चातुर्मास) चार महीने की तपस्या के साथ सिंह की गुफा में बिताना चाहता हूँ।

द्वितीय—मैं भी चातुर्मासिक तपस्या करके सांप की बांबी पर पूरा करना चाहता हूँ।

तृतीय—मैं चार मास की तपस्या करके कुये के किनारे पर (चाठ पर) ध्यान लगाना चाहता हूँ।

चौथे—(स्थूलीभद्र)—मैं कौशा की चित्रशाला में चतुर्मास बिताना चाहता हूँ।

इस प्रकार आचार्य की आज्ञा लेकर चारों मुनि चले गये।

स्थूलीभद्र को आते देख कर कौशा अत्यन्त हर्षित हुई, किन्तु इसके राग रंग के सामने मुनि को उदासीन देखकर उसकी

आशाओं पर सौ घड़े पानी गिर पड़ा। मुनि ने धीरे धीरे उसे समझाना शुरु किया और वह एक आदर्श श्राविका के रूप में प्रकट हुई। चारों मुनि अपना चतुर्मास पूरा करके गुरु की सेवा में आये। गुरु ने पहले आने वाले तीनों मुनियों की पीठ थपथपा कर यह कठोर काम करने पर धन्यवाद दिया। और जब स्थूलीभद्र आये तो "अति कठोर कार्य करने वाले को शतशः साधुवाद" दिये।

सिंह गुफा में चतुर्मास करने वाले मुनि के मन ईर्षा जगी—हम चार मास भूखे प्यासे मौत के मुंह पर खड़े रहे, वह तो सिर्फ कठोर कार्य था। और ये स्थूलीभद्र जो लाल कुन्दे बन रहे हैं, अति कठोर (महादुष्कर) कार्य करने वाले ! मैं भी वहीं जाकर चतुर्मास करूंगा ! बस ! ईर्षा वश होकर चल पड़े कौशा की चित्रशाला की ओर ......

× × × ×

कौशा ने मुनि की परीक्षा ली.............अपने हाव भाव हास विलास का कीचड़ बिखेरा और मुनि उसमें फंस गये। कौशा ने मुनि की मांग पर शर्त रखी, नेपाल से रत्न कंबल लाकर दो। मुनि चतुर्मास में ही उसको लाने के लिये निकल पड़े। बड़ी मुश्किल से एक कंबल लेकर आये कि मार्ग में चोर मिले और कंबल छीन कर ले गये.........मुनि पुनः नेपाल गये और बड़े परिश्रम से दूसरी कंबल लेकर चतुर्मास बीतने तक ज्यों ही कौशा के पास आये, कौशा ने पैर पोंछ कर फेंक दिया—

मुनि ने बड़ा दुःख प्रकट किया, कौशा ने अपना तीखा व्यंग स्पष्ट किया—क्यों ? तुम अपने संयम को भी योंही कीचड़ में नहीं फेंक रहे हो ? मैं कौशा श्राविका हूँ। स्थूलिभद्र जैसे निर्लिप्तों की शिष्या हूँ। मुनि की आँखे खुल गईं ...... पश्चाताप करते हुए वे बार बार स्थूलीभद्र की प्रशंसा करने लगे ....

स्थूलीभद्र वास्तव में काजल की कोठरी में रहकर भी बेदाग, और कीचड़ में रहकर भी निर्लिप्त रहने वाले महायोगी थे ....।

(४८)

स-सुदर्शन—मैं सुदर्शन की तरह चरित्रबल की सर्वोच्चता सिद्ध करके बता दूँ !

सुदर्शन—राज पुरोहित तथा सेठ सुदर्शन की प्रगाढ मैत्री थी। पुरोहितजी की पत्नी ने सेठ के सौन्दर्य पर मोहित होकर अपने चंगुल में फंसाने का निश्चय किया। एक दिन जब पुरोहितजी घर से कहीं गये थे, उनकी पत्नी ने सेठजी के पास संदेश भेजा—आपके मित्र अस्वस्थ हैं।

सेठ सुदर्शन राजपुरोहित के घर पहुँचे तो पुरोहित पत्नी का पाप पूर्ण प्रस्ताव सुनकर वे कांप उठे। उन्होंने कानों पर हाथ रख कर कहा—मुझे क्षमा करो बहन ! मुझमें ऐसा सत्व कहाँ है। और वहाँ से चले आये।

राजपुरोहित की पत्नी ने चम्पा नरेश की रानी अभया के साथ वार्तालाप करते हुये सुदर्शन की चर्चा की। उसी समय सेठ राजमहल के नीचे से जा रहे थे।

रानी को वात लग गयी। उसने दासी भेज कर सेठ सुदर्शन को राज भवन के अंतःपुर में बुलवाया। परन्तु रानी विफल हुई। उसके हाव भाव, प्रलोभन तथा धमकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसे अवसरों पर प्रायः पराजित नारी जो करती है, रानी ने भी वही किया। उसने सेठ सुदर्शन पर आरोप लगाया कि वे छिपकर अंत.पुर में पहुँचे और रानी को भ्रष्ट करना चाहते थे।

सेठ सुदर्शन मौन वने रहे। उनका अपराध ही ऐसा वताया गया था कि नरेश क्रोधान्ध हो उठे। उन्होंने आज्ञा दी—'इसे इसी समय शूली पर चढ़ा दो।'

सेठ सुदर्शन शूली पर चढ़ाये जाने लगे; किन्तु नरेश, वधिक तथा सभी उपस्थित लोग चकित रह गये यह देखकर कि शूली सहसा स्वर्ण सिंहासन वन गई। अव जाकर रानी के पाप का भण्डाफोड़ हुआ। परन्तु सेठ ने उसे जीवनदान दिला दिया। और संसार को वतला दिया कि चरित्र वल ही सवसें वड़ी शक्ति है।

(४६)

ह-"हिंसा"—मैं सुदर्शन की तरह हिंसा पर अहिंसा की विजय पताका फहरा दूँ !

हिंसा पर अहिंसा की विजय—अर्जुन माली वड़ी श्रद्धापूर्वक एक यक्ष की पूजा करता था। एक दिन उसने जैसे ही पूजा समाप्त की छः डाकू आ धमके। उन दुर्जनों ने अर्जुन को रस्सियों

से बाँध दिया और उसके घर को लूट लिया। उसकी पत्नी के साथ भी वे दुर्व्यवहार करने लगे।

अब अर्जुन माली को क्रोध आया। वह बंधा बंधा ही दाँत पीसने लगा और मन ही मन कहने लगा—'मैंने इतने दिनों व्यर्थ इस यक्ष की पूजा की। इसके सामने ही मेरी तथा मेरी पत्नी की यह दुर्गति हो रही है। मैं जानता कि यह इतना कापुरुष तथा असमर्थ है तो इसकी प्रतिमा यहाँ से उठा फेंकता।'

अर्जुन क्रोध में भी सच्ची भावना से यक्ष को मान रहा था। उसकी भक्ति से यक्ष संतुष्ट हो गया। अर्जुन के शरीर में ही यक्ष का आवेश हुआ। अब तो आवेश में अर्जुन ने अपने बंधन तोड़ डाले और मूर्ति के पास रखा एक लोहे का मुद्गर उठा लिया। अर्जुन में यक्ष का बल था, उसने छः डाकुओं तथा अपनी स्त्री को भी तत्काल मार दिया। परन्तु इसके पश्चात यक्ष के आवेश में अर्जुन माली जैसे उन्मत्त हो गया। वह प्रतिदिन सात मनुष्यों को मारने लगा। राजगृह में हाहाकार मच गया। लोगों ने उस मार्ग से निकलना बन्द कर दिया।

उन्हीं दिनों भगवान् महावीर राजगृह के समीप उद्यान में पधारे। उनके आगमन का समाचार सेठ सुदर्शन को मिला। तीर्थंकर का दिव्योपदेश श्रवण करने उन्हें अवश्य जाना था। घरके लोगों ने उन्हें मना किया कि अर्जुन राज पथ पर मुद्गर लिये घूम रहा है, तो वे बोले—'वह भी तो मनुष्य ही है, मैं उसे समझाऊंगा।'

सेठ सुदर्शन राज पथ पर पहुँचे। अर्जुन आज छः व्यक्तियों का वध कर चुका था और सातवे की खोज में था। सेठ को देखते ही वह मुद्गर उठाकर दौड़ा; किन्तु सेठ स्थिर खड़े रहे। प्रहार के लिये उसने मुद्गर उठाया तो मुद्गर के साथ स्वयं भूमि पर गिर पड़ा। उसके शरीर में आविष्ठ यक्ष एक नैष्ठिक आचारवान् अहिंसक का तेज सहन नहीं कर सका था, इसलिये वह भाग गया था।

सेठ सुदर्शन ने पुकारा—'उठो अर्जुन'! मेरी ओर क्या देख रहे हो भाई! आओ! हम दोनो साथ चलकर आज तीर्थंकर की वाणी श्रवण करे।'

सेठ ने हाथ पकड़कर उसे उठाया और सचमुच उठा लिया जीवन के पाप पंक से; क्योंकि तीर्थंकर के समीप पहुँचते ही अर्जुन उनके चरणों में नत हो गया। वह दीक्षित हो गया। नगर वासी उसे मुनि वेश में देखकर भी उसके द्वारा मारे गये अपने स्वजनों का बदला लेने के लिये उसे पत्थरों से मारते थे, उस पर दण्ड प्रहार करते थे; किन्तु अब वह शान्त रहता था। उसे आदेश जो मिला था—

अक्को सिज्जा परे भिक्खु न तेसिं पडि संजले—
"भिक्षु किसी से सताए जाने पर भी क्रोध न करे!"

(४६)

क्ष—'क्षत्रिय पुत्र'—'मैं क्षत्रिय पुत्र की तरह अपने क्रोध को शान्त करके क्षमा वीर का आदर्श रखूँ।

क्षत्रिय पुत्र—वह क्षत्रिय कुमार अपने भाई के हत्यारे की खोज में निकल पड़ा। क्रोध के आवेश में उसने प्रतिज्ञा करली कि अपने शत्रु को पकड़े विना घर नहीं लौटूंगा। धरती का चप्पा-चप्पा खोजते १२ वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन शत्रु उसके हाथ चढ़ गया। ज्यों ही उसकी लपलपाती तलवार उठी कि शत्रु ने दीन भाव से हाथ जोड़ लिये, मेरी रक्षा करो, तुम्हारी गाय हूँ। क्षत्रिय कुमार की तलवार रुक गई मन झुंझला उठा। वह अपनी माँ के सामने आया। माँ! मैं १२ वर्ष तक इसकी खोज में भटकता रहा और आज मिलते ही यह शरण माँग रहा है। अब क्या करू?

माँ ने मधुर शब्दों में कहा – पुत्र! क्षत्रिय धर्म का पालन करो! इस दीन की हत्या मत करो। अपने क्रोध को शान्त करो।

क्षत्रिय कुमार ने मन को समझाया...... ....शत्रु को छोड़ कर क्रोध को असफल करने का अनूठा आदर्श रखा।

× × × × ×

(५०)

त्र–'त्रिशला नन्दन''— मैं त्रिशला नन्दन की तरह आत्म साधना में अन्य के श्रम व सहायता की आकांक्षा नहीं रखूँ!

—एक बार श्रमण भगवान् महावीर कुमार ग्राम से कुछ दूर संध्या वेला में ध्यानस्थ खड़े थे। एक गोपाल आया और ध्यानस्थ

महावीर से बोला – 'रे श्रमण ! जरा देखते रहना मेरे बैल यहाँ चर रहे हैं, मैं अभी लौट कर आया।' दीर्घ तपस्वी महावीर अपनी तपस्या में थे।

गोपाल लौट कर आया तो देखा बैल वहाँ पर नहीं हैं, परन्तु श्रमण वैसे ही ध्यान में स्थित है। पूछा – "मेरे बैल कहाँ हैं ?" इधर उधर देखा भी बहुत। पर बैलों का कुछ भी अता पता नहीं लगा। वे अपने सहज स्वभाव से चरते चरते कहीं दूर निकल गये थे।

श्रमण महावीर का कुछ उत्तर न पाकर वह कोप भर कर बोला – "धूर्त ! तू श्रमण नहीं, चोर है।" इधर वह गोपाल रस्सी से श्रमण महावीर को मारने लगता है, उधर देवराज इन्द्र स्वर्ग सें आते हैं कि कहीं यह अज्ञानी श्रमण महावीर को·· ············!

इन्द्र ने ललकार कर गोपाल से कहा – "सावधान ! तू जिसे चोर समझता है; वे राजा सिद्धार्थ के वर्चस्वी राजकुमार वर्धमान हैं। आत्म साधना के लिये इन्होंने कठोर श्रमणत्व धारण किया है। दीर्घ तप और कठोर साधना करने के कारण ये महावीर हैं।"

गोपाल अपने अज्ञान मूलक अपराध की क्षमा माँग कर चला गया। पर इन्द्र ने श्रमण महावीर से कहा – भंते ! आपका साधना काल लम्बा है। इस प्रकार के उपसर्ग, परिपह और संकट

आगे और भी अधिक आ सकते हैं। अतः आपकी परम पवित्र सेवा में मैं आपके समीप रहने की कामना करता हूँ।

गोपाल का विरोध और इन्द्र का अनुरोध महावीर ने सुना तो अवश्य। पर अभी तक वे अपने समाधि भाव में स्थिर थे। समाधि खोल कर बोले—

"इन्द्र"! आज तक के आत्म – साधकों के जीवन इतिहास में न कभी यह हुआ, न कभी यह होगा और न कभी यह हो सकता है कि मुक्ति या मोक्ष अथवा कैवल्य दूसरे के बल पर दूसरे के श्रम पर और दूसरे की सहायता पर प्राप्त किया जा सके।"

× × × × ×

(५१)

ज्ञ–" ज्ञान और क्रिया "—मैं ज्ञान और क्रिया के समन्वय से अपने परम ध्येय मुक्ति को प्राप्त करूँ!

ज्ञान और क्रिया—सामने पर्वत पर रत्नों की गठरी पड़ी है। अंधे और लूले दो साथी उस पर ललचा रहे हैं। अंधा भी लेना चाहता है, वह दौड़ सकता है, उसके चरणों में शक्ति है पर मार्ग का ज्ञान उसे नहीं है……वह कैसे जाये? और किस प्रकार रत्नों को प्राप्त करे?

लूले के मन में पानी भर रहा है। सामने पड़ी गठरी उसकी आँखों में नाच रही है, सीधा पदमार्ग उसे स्पष्ट दिखाई दे रहा है ..... पर वह दौड़े तो कैसे ? उसके नेत्र समर्थ है पर चरणों में शक्ति नहीं है.......... ..।

पहले के पास नेत्र की समस्या है, दूसरे के पास चरण की ..... दोनों ने मार्ग निकाला। लूला अंधे के कंधों पर बैठा, अंधा चलने लगा। लूला उसे ठीक रास्ता बताता गया ...... और चमचमाती रत्न गठरी उनके हाथ लग गई।

तभी तो भगवान् महावीर ने कहा है—

आहंसु विज्जा चरणं पमोक्खो।

ज्ञान और क्रिया के समन्वय से ही मुक्ति मिल सकती है।

× × × × ×

(५२)

शुभम्—मैं " शुभं शीघ्रं " के अनुसार शुभ कार्यो में सदा अप्रमत्त रहूँ।

× × × × ×